Amritpath Monthly

ओ३म्

समाचार पत्र पंजीयन सं०
UTTHIN / 2003 11080

अंक-6 | नवम्बर - दिसम्बर 2023 | वर्ष-20

अमृत पथ

200वीं महर्षि दयानन्द सरस्वती जयन्ती 1824-2024

अपने धर्म संस्कृति और देश के लिए दिया था

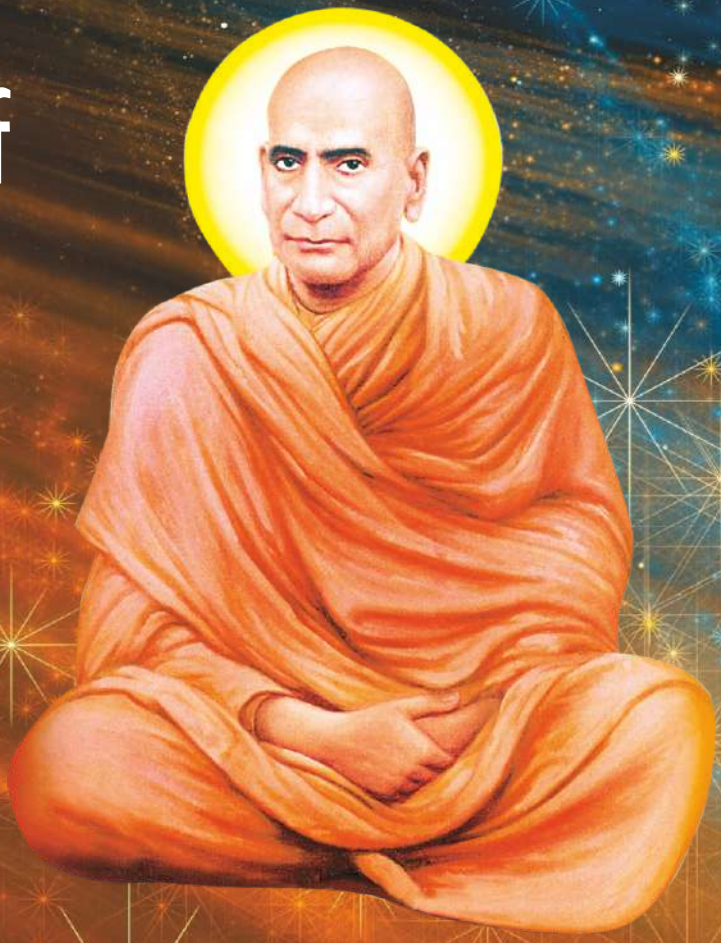

स्वामी श्रद्धानंद जी ने बलिदान

आर्य प्रतिनिधि सभा उत्तराखण्ड (पंजी०) का मासिक मुख पत्र

आर्य समाज नई टिहरी–वेद प्रचार सम्मेलन

ओ३म्
कृण्वन्तो विश्वमार्यम्

अमृत पथ

वर्ष-20 अंक-6
आर्य प्रतिनिधि सभा उत्तराखण्ड (पंजी०) का मुख पत्र
उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत
उठो, जागो, परमात्मा देव से वरदान प्राप्त करो

-: संस्थापकः-
श्री यशपाल आर्य जी

-: संरक्षक :-
डॉ० महावीर प्रसाद अग्रवाल जी
प्रति कुलपति पतंजलि योग पीठ

-: परामर्शदाता मण्डल :-
डॉ० रघुवीर वेदालङ्कार जी
डॉ० योगेश शास्त्री जी
आचार्य डॉ० धनन्जय आर्य जी
आचार्य डॉ० विनय विद्यालंकार जी

-: प्रबन्ध सम्पादक :-
श्री ज्ञान चन्द गुप्ता आर्य जी
9897346730

-: सह प्रबन्ध सम्पादक :-
श्री मनमोहन जी
9149259685

-: सम्पादक :-
श्री देवेन्द्र प्रसाद यादव जी
9837011321
श्री चन्द्र प्रकाश जी
9761939183

-: सह सम्पादक :-
श्री सुधीर गुलाटी जी
7060299951

-: कार्यालय :-
आर्य प्रतिनिधि सभा उत्तराखण्ड (पंजी०)
आर्य समाज मन्दिर, धामावाला,
देहरादून - 248001

समाचार पत्र पंजीयन सं०
UTTHIN /2003 /11080

मूल्य
एक प्रति : रू.20/- वार्षिक : रू.200/-
आजीवन : रू.2000/-
Email : aryapsuk@gmail.com
Facebook : Arya Pratinidhi Sabha Uttarakhand

अनुक्रमणिका

क्रम सं०	विषय	पृष्ठ सं०
1	आर्यसमाज नई-टिहरी में ''वेद प्रचार सम्मेलन'	2-3
2	ब्रह्मचर्य: अर्थ और स्वरूप	4-5
3	संध्या	6-9
4	उपनिषदों की कहानियाँ	10-12
5	चतुर्दिवसीय वेद प्रचार-प्रसार महोत्सव का सहर्षोल्लास समापन	13-14
6	श्रद्धेय यशपाल आर्य जी जन्म शताब्दी के अवसर पर पुण्य स्मरण	14-15
7	आओ स्मरण करें महान पुरूषों को.....	16-20
8	व्यक्ति और समाज व्याहृतियों की छाया में-	21-24

विज्ञापन दरः

पिछला पृष्ठ कवर रंगीन	:	रु. 5100/-
अंदर पृष्ठ कवर रंगीन	:	रु. 3100/-
अंदर पृष्ठ ब्लैक-व्हाईट फुल	:	रु. 1100/-
अंदर पृष्ठ ब्लैक-व्हाईट	:	रु. 600/-

मुद्रक और प्रकाशक

मुद्रक, प्रकाशक एवं सम्पादक श्री देवेन्द्र प्रसाद यादव जी एवं श्री चन्द्र प्रकाश जी द्वारा
आदर्श प्रिन्टर्स एण्ड स्टेशनर्स, पल्टन बाजार, देहरादून से मुद्रित एवं प्रांतीय कार्यालय आर्य प्रतिनिधि सभा उत्तराखण्ड (पंजी०) आर्य समाज मन्दिर धामावाला देहरादून से प्रकाशित।

अमृत पथ में प्रकाशित लेखों में व्यक्त विचार एवं दृष्टिकोण लेखक के हैं। सम्पादक अथवा प्रकाशक का उनसे सहमत होना आवश्यक नहीं है। किसी भी वाद के प्रतिवाद हेतु न्याय क्षेत्र देहरादून होगा।

आर्यसमाज नई-टिहरी में ''वेद प्रचार सम्मेलन''

मनमोहन मंत्री

महर्षि दयानंद सं0 1912/सन् 1855 अप्रैल माह में कुम्भ मेले उपरान्त हरिद्वार से ऋषिकेश होते हुये टिहरी आए। महर्षि ने टिहरी के बारे में लिखा ''यह स्थान विघावृद्धि के कारण साधुओं एवं राज्य पंडितों से पूर्ण और प्रसिद्व था। स्वामी जी को अभी तक तंत्र-मंत्र का ज्ञान नही था। लेकिन जब राजपंडित के पास तंत्र ग्रन्थों को देखा तो कहा'' इन तंत्र ग्रन्थों को पढ़कर मैने उज्जवल रूप से जान लिया कि ऐसे जधन्य ग्रन्थों को लिखकर धूर्त और दुष्ट लोगों ने उन्हें धर्म-शास्त्र के नाम से प्रचारित किया है। हिमालयी दक्षिणी ढलान पर स्थित टिहरी जो टिहरी का अपभ्रंष है। इसी स्थान पर मूलशंकर का आगमन विद्वान पूर्णानन्द सरस्वती से संन्यास लेकर शुद्धचेतन महर्षि दयानन्द सरस्वती बनने के उपरांत हुआ था। हिमालय भ्रमण सत्य की खोज में उनके सच्चें जिज्ञासु होने का परिचायक है। इस स्थान पर आर्य उप-प्रतिनिधि सभा गढ़वाल के तत्वावधान में आर्य समाज टिहरी का हरीक जयंती समारोह 5,6,व 7 मई 1995 को बड़े उत्सवमयी रूप में मनाया गया था। जो इस आर्यसमाज के स्थापना वर्ष 5 मई 1920 को भी रेखांकित करता है। टिहरी शहर में बांध के कारण बनी झील में शहर के जलमग्न होने से पुर्नवास के अन्तर्गत सरकार द्वारा टिहरी के सापेक्ष नई-टिहरी में धार्मिक स्थलों स्थापित किये जाने पर निर्मित आर्यसमाज भवन नई-टिहरी,मौलधार में वर्ष 2011 को 5, 6, व 7 मई को श्री उम्मेद सिंह विषारद व श्री रतन सिंह शाह के अग्रणी दायित्व के साथ इस आर्यसमाज की खोज को लेकर ''वैदिक आर्य महा सम्मेलन'' आयोजन किया गया था। जो पुन: इस उदेश्य के साथ 5, 6 व 7 मई सन् 2016 को जन-जागरण के निमित आर्य महा सम्मेलन भव्य रूप से मनाया गया। इस आयोजन में स्वामी वेदानन्द सरस्वती उत्तरकाशी, स्वामी शान्तानन्द सरस्वती, स्वामी निर्भयानन्द सरस्वती हाथरस/अलीगढ़, स्वामी शौम्यानंद सरस्वती, सार्वदेशिक सभा दिल्ली, ठाकुर विक्रम सिंह, दिल्ली इस उत्सव की गरिमामयी उपस्थिति थी। इन बड़े आयोजनों के द्वारा आर्यसमाज नई-टिहरी में आर्यजनों का ध्यान आकर्षण तो हुआ । लेकिन इस आर्यसमाज भवन में स्थाईपन का अभाव लगातार बना रहा है। इस भव्य भवन की उपयोगिता शून्य के साथ-साथ आर्य उप-प्रतिनिधि सभा गढ़वाल के लिये गंभीर विषय है। इसी के निमित आर्य प्रतिनिधि सभा उत्तराखण्ड के सुष्टिजनों/पदाधिकारियों में श्री दयानंद तिवारी, श्री सुधीर गुलाटी, वर्तमान प्रधान श्री देवेन्द्र प्रसाद यादव, श्री सुखदेव शास्त्री के उत्साह से दिनांक 29, 30 सितम्बर व 01 अक्टूबर 2023 को आर्य समाज भवन नई-टिहरी में ''वेद प्रचार सम्मेलन'' के द्वारा आर्य समाज के सन्दर्भ में जन-जन तक आर्य समाज भवन की भनक व आर्य समाज की विचार धारा से इस जिला मुख्यालय में आर्ष विधापीठ नजीबाबाद से आमंत्रित आचार्य प्रियमवदा वेद भारती, आचार्य रामचंद्र, ब्रहमचारिणियां, स्वामी वेद अमृतानंद, आचार्य अनुज शास्त्री तथा हरिद्वार, रूड़की, देहरादून, विकासनगर, गढ़वाल की विभिन्न आर्यसमाजों से इस सम्मेलन में सहभाग कर रहे प्रतिनिधि बिगुल बजाने में सफल रहे। इस ''वेद प्रचार सम्मेलन'' में टिहरी विधायक श्री किशोर उपाध्याय, ब्लॉक प्रमुख जाखणीधार श्रीमती सुनीता देवी, नगर पालिकाध्यक्ष श्रीमती सीमा कृशाली, राडस अध्यक्ष श्री सुशील बहुगुणा तथा वैदिक विद्वानों को गंभीरता और एकचित समय देकर श्रवण करना कहीं न कहीं इस सम्मेलन ने आहट पैदा की है। पांच सत्रों में सम्पन्न यह ''वेद प्रचार सम्मेलन'' उत्तराखण्ड के तराई क्षेत्रों से आने वाले महानुभावों के लिये भी सुखद अनुभव प्रकृति के निकटता अहसास और दर्शनीय स्थल पर सरकार द्वारा बनाये गये सुन्दर आर्य समाज भवन से टिहरी झील दृश्य को लेकर पैदा हुआ। आर्यजनों द्वारा दिनांक 29

सितम्बर 2023 को अपराहन में नगर भ्रमण में जहां ओ३म् ध्वज, ओ३म् पटके तथा बैनर नगर में नवीनता का संचार करते जा रहे थे। वही इस नगर भ्रमण में सहभागिता कर रहे आर्यजनों, गुरूकुल के ब्रहमचारिणियों, आचार्यो, सन्यासी द्वारा किये जा रहे उद्धोष को लेकर स्थानीय नागरिक घरों से बाहर निकल जिज्ञासू बने। वर्तमान में आर्य समाज टिहरी इतिहास के एकमात्र हस्ताक्षर और इस सम्मेलन के अप्रत्यक्ष रूप से सहभागी बने, श्री गणेश लाल शास्त्री, विधावाचस्पति जिनके पौरहित्य हरीक जयंती कार्यक्रम का आयोजन वर्ष 1995 हुआ था। टिहरी-गढ़वाल में आर्य समाज के संदर्भ में मील का पत्थर हैं। जब भी आर्यसमाज नई-टिहरी का संदर्भ आयेगा, उसमें टिहरी रियासत के प्रथम चीफ जस्टिस गंगा प्रसाद व महावीर प्रसाद गैरोला, टिहरी नगर पालिका के प्रथम अध्यक्ष ''वेद प्रचार सम्मेलन में मातृशक्ति श्रीमती स्नेहलता खटटर, श्रीमती उर्मिला राठी, श्रीमती अमरेश आर्य, श्रीमती उषा सिंह, श्रीमती रामेष्वरी आर्य,श्रीमती सोनिका वालिया, श्रीमती मृदुला गुलाटी, श्रीमती सुषमा शर्मा, श्रीमती शोभा आहुजा, श्रीमती राजवंती, श्रीमती जगवती चौधरी, श्रीमती मीना अग्रवाल, श्रीमती सरस्वती गुसांई, श्रीमती शीला गुप्ता, श्रीमती सीमा चौधरी की सहभागिता तथा इन पांच सत्रीय कार्यक्रम में अध्यक्षता का दायित्व निभाने वाले श्री श्याम सिंह, श्रीमती स्नेहलता खटटर, श्री सुखदेव शास्त्री तथा सर्वश्री सुधीर गुलाटी, महेन्द्र आहुजा, भोपाल सिंह, चन्द्रप्रकाश, अजय आर्य, नारायण दत्त पंचाल, श्री मनमोहन सिंह असवाल, श्री बलवीर सिंह, श्री भगतराम, श्री चन्द्रप्रकाश आर्य, श्री आशुतोष वर्मा की भूमिका उनके सर्म्पण के भाव को इंगित करती है। एडवोकेट आर्य संदीप यादव और जगत सिंह द्वारा देर रात पहुंच कर सहयोगी बनना उनके आर्य समाज के प्रति स्वभाव ही था। कोलागढ़ आर्य समाज से श्री शंकर सिंह क्षेत्री व टीकाराम डबराल, श्री नरेन्द्र, की कारसेवा भावना बहुत सहायक रही। जयविन्द्र गिरि, कांस्टेबल जो बड़े भाव से कार्यक्रम में निरन्तर अपनी उपस्थिति से सहयोग वे प्रवचनों का श्रवण करते रहे, भी एक सकारात्मक पक्ष इस सम्मेलन का था। श्री हरफूल सिंह राठी व श्री शम्भूनाथ ''वेदमित्र'' निरन्तर इस कार्यक्रम में गतिमान बनना उनकी अवस्था को मुंह दिखना जैसा प्रतीत होता था। माँ को समझना, इस कार्यक्रम में जो मनीषा गोगिया व मिन्नी गोगिया ने के0बी0 गोगिया की भावनाओं को श्रद्धापूर्वक निभाया वो श्राद्ध के नाम पर पाखण्ड रचने वालों के लिये एक आइना था। कौन कहता है कि गुरूकुल वर्तमान की प्रासंगिता नही है। गुरूकुल की ब्रहमचारिणियों के प्रस्तुति और चरित्र को इस कार्यक्रम में देखने वाले एक बार अवश्य गुरूकुल की ओर पहुंचे होगे। आचार्य अनुज शास्त्री और स्वामी वेद अमृतानंद के प्रवचनों से कौन नही चेतन अवस्था में गया होगा। भले ही वो चेतना कुछ क्षण की रही हो। आज आर्यसमाज नई-टिहरी श्री राजेश डियंडी, श्री विजय दास, श्री विक्रम सिंह कठैत, श्री जयेंद्र पंवार, श्री राजेन्द्र प्रसाद बहुगुणा के समन्वय में गतिमान होने का विश्वास इस कार्यक्रम जगा है। हम इनके मंगलाभिलाषी हैं।। हम इस सम्मेलन को आर्थिक पक्ष के रूप में मजबूती प्रदान करने वाले सभी दानियों का हदय से आभार व्यक्त करते हैं। ईश्वर उनकी यह प्रवृति सदैव बनाये रखे। ''वेद प्रचार सम्मेलन'' आर्यसमाज नई-टिहरी श्री रतन सिंह शाह के कारण ही सम्पन्न हुआ, परहेज! विस्तार कही उनके योगदान को समिति न कर दे। आर्य प्रतिनिधि सभा उत्तराखण्ड, कार्यालय आर्यसमाज धामावाला, आर्य उपप्रतिनिधि सभा गढ़वाल, कार्यालय आर्यसमाज सतपुली, आर्य उप- प्रतिनिधिसभा देहरादून, आर्य उप-प्रतिनिधि सभा हरिद्वार, आर्य समाज कटारपुर व विभिन्न आर्यसमाज विकासनगर, कौलागढ, धामावाला, डोबरी, लक्ष्मणचौक, (देहरादून) जगजीतपुर, बी0 एच0 ई0 एल0 हरिद्वार, रामनगर, बी0 टी0 गंज (रूड़की) कोटद्वार, घ्रुवपुर, जयहरीखाल, चौपड़कोट- थलीसैण, सावंली आदि पंचपुरी बैजरों के पदाधिकारियों व प्रतिनिधियों के लिये मैं ईश्वर से आपकी धवल कीर्ति एवं सुदीर्ध जीवन की कामना करता हूँ।

■■■

ब्रह्मचर्यः अर्थ और स्वरूप

प्राचार्य अभय आर्य

ब्रह्म' के अर्थ परमात्मा, अन्न, वीर्य से लिए जाते हैं। 'ब्रह्मचर्य' जो शब्द है विवेचनात्मक रूप से उसका यही अर्थ बनता है कि वीर्य का क्षय न करना वा ब्रह्म में रमण करना। किसलिए इस धातु का क्षय न किया जाए? उत्तर बनता है कि इहलौकिक और पारलौकिक सुख प्राप्ति के लिए। जिस प्रकार विद्या, यज्ञ आदि शुभ गुणों के होने का मूल प्रयोजन ब्रह्म प्राप्ति है, उसी प्रकार ब्रह्मचर्य का मूल प्रयोजन भी ब्रह्म प्राप्ति है। कठोपनिषद् कहता है, "यदिच्छन्तो ब्रह्मचर्य चरन्ति तत्ते पदं संग्रहेण ब्रवीम्योमित्येतत्।" जिसकी प्राप्ति की इच्छा से ब्रह्मचर्य का पालन करते हैं उसका नाम "ओ३म्" है। आयुर्वेद रोगादि दुःखों का कारण जन्म को मानता है। उसी शास्त्र में जन्म का कारण 'उपधा' (भोगों में प्रवृत्ति) को माना गया है। विषयों (शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध) में आसक्त होकर ही मनुष्य दुःखों का शिकार बनता है। अतः आयुर्वेद भी दुःखों के मूलोच्छेद के लिए 'ब्रह्मचर्य' के गीत गाता है।

जिसकी बुद्धि में आरम्भ से ही ब्रह्म (परमात्मा) के स्वरूप व उसकी प्राप्ति के महत्व की बात नहीं घुसती, वह इतना अवश्य जान ले कि वह अपने शरीर से बिना 'ब्रह्मचर्य' का पालन किए धन, स्त्री आदि का भी यथावत् सुख नहीं भोग सकता और न ही निरोगकारी, धार्मिक सन्तान की ही उत्पत्ति कर सकता है।

यहाँ इतना अवश्य जान लेना चाहिए कि 'ब्रह्मचर्य' इस शब्द में धातुरक्षण तथा ब्रह्म (परमात्मा) रमण प्रासंगिक रूप से, औचित्यपूर्ण ढंग से इस प्रकार एक-दूसरे से घुले मिले हैं, एक दूसरे के पूरक हैं कि इन्हें अलग नहीं किया जा सकता। हम अपनी न्यूनता को स्वीकार कर सदैव प्रार्थना करते हैं- 'वीर्य्यमसि वीर्य्यं मयि धेहि।' (यजुर्वेद) हे परमात्मा आप अनन्त पराक्रमयुक्त हैं, इसीलिए मुझे भी कृपा करके पूर्ण पराक्रम दीजिए। इस प्रकार हम क्षय से बच सकते हैं। जब विषय वासनाएं हमें अपनी ओर आकर्षित करती हैं उस समय उसी परमात्मा का वरण कर हम इनसे बच पाते हैं, इसीलिए उसे 'वरेण्यम् कहा है।

ऋषियों की यह महती दया है कि उन्होंने 'ब्रह्मचर्य' के स्वरूप पर ऐसा प्रकाश डाला कि जो उसके प्रति जितनी श्रद्धा रखकर, जितने अंश में उसका पालन करेगा, उतने ही अंश में उसे सुख मिलेगा। आयुर्वेद के सर्वमान्य ग्रन्थ 'सुश्रुत' में शरीर की चार अवस्थाएँ मानी गई हैं, जिन पर प्रकाश डालते हुए महर्षि दयानन्द ने अपने अमरग्रन्थ सत्यार्थप्रकाश में लिखा है- "एक (वृद्धि) जो 16वें वर्ष से ले के 25वें वर्ष पर्यन्त सब धातुओं की बढ़ती होती है। दूसरा (यौवन) जो 25वें वर्ष के अन्त और 26वें वर्ष के आदि में युवावस्था का आरम्भ होता है। तीसरी (सम्पूर्णता) जो 25वें वर्ष से ले के चालीसवें वर्ष पर्यन्त सब धातुओं की पुष्टि होती है। चौथी (किञ्चित्परिहाणि) जब सब साङ्गोपाङ्ग शरीरस्थ सकल धातु पुष्ट होके पूर्णता को प्राप्त होते हैं।"

छान्दोग्य उपनिषद् में तीन प्रकार के ब्रह्मचर्य का वर्णन है-

1. कनिष्ठ- जो मनुष्य 24 वर्ष की आयु तक ब्रह्मचारी रहकर वेदादि विद्या और सुशिक्षा का ग्रहण करे और विवाह करके भी लम्पटता न करे तो उसके शरीर में प्राण बलवान होकर सब शुभगुणों के वास कराने वाले होते हैं। ऐसे मनुष्य की 'वसु ब्रह्मचारी' संज्ञा होती है।

यहाँ जो यह तथ्य दिया है कि "शरीर में प्राण बलवान होकर सब शुभगुणों के वास कराने वाले होते हैं", यह बड़ा ध्यान देने योग्य है। शरीर से हम जितनी भी चेष्टाएँ करते हैं, यथा-अंगों का उठाना, हिलाना, भोजन का गले से नीचे जाना, भोजन का रसादि धातुओं में बदलना, मल-मूत्र का त्याग, सभी कुछ तो प्राणशक्ति द्वारा होता है। अत: प्राण बलवान होने पर सभी चेष्टाएँ यथावत् होकर आयोग्यता आदि शुभगुणों की प्राप्ति होती है। मन पर नियन्त्रण के लिए भी तो योगी लोग 'प्राणायाम' का ही सहारा लेते हैं। यहाँ स्पष्ट है कि ब्रह्मचर्य से प्राण बलवान होते हैं। ब्रह्मचर्य और योग को आत्मसात् करने वाले महर्षि दयानन्द 'सत्यार्थप्रकाश' के द्वितीय समुल्लास में लिखते हैं, "देखो जिसके शरीर में सुरक्षित वीर्य रहता है तब उसको आयोग्य, बुद्धि, बल, पराक्रम बढ़के बहुत सुख की प्राप्ति होती है। .....जिसके शरीर में वीर्य नहीं होता वह नपुंसक महाकुलक्षणी और जिसको प्रमेह रोग होता है वह दुर्बल, निस्तेज, निर्बुद्धि, उत्साह, साहस, धैर्य, बल, पराक्रमादि गुणों से रहित होकर नष्ट हो जाता है।" अत: भूलकर भी ब्रह्मचर्य को नष्ट मत करो। गिर गए हो तो फिर उठ जाओ।

माता-पिता, आचार्य का कर्त्तव्य है कि अपने सन्तान को "ब्रह्मचर्य का महत्व बताते हुए इस प्रकार की शिक्षा करें- उपस्थेन्द्रिय (मूत्रेन्द्रिय) के स्पर्श और मर्दन से वीर्य की क्षीणता, नपुंसकता होती है और हस्त में दुर्गन्ध भी होता है, इससे उसका स्पर्श न करें।"

2. मध्यम- जो मनुष्य 44 वर्ष पर्यन्त ब्रह्मचारी रहकर विद्या का अभ्यास करता है, उसके प्राण, इन्द्रियाँ, अन्त:करण और आत्मा बलयुक्त होकर सब दुष्टों को रुलाने और श्रेष्ठों का पालन करने हारे होते हैं। ऐसे ब्रह्मचारी की 'रुद्र' संज्ञा होती है।

3. उत्तम ब्रह्मचर्य- जो 48 वर्ष पर्यन्त यथावत् ब्रह्मचर्य करता है उसके प्राण अनुकूल होकर सब विद्याओं का ग्रहण करते हैं। इस ब्रह्मचारी की 'आदित्य' संज्ञा है। अनेक भोगों के कीड़े या ऋषि विरोधी लोग 48 वर्ष तक के ब्रह्मचर्य के पालन के प्रसंग का उपहास करते हैं। वे न तो पूरे प्रसंग जिसमें 24 वर्ष के ब्रह्मचर्य का वर्णन भी है, उस पर प्रकाश डालते हैं और न ही यह बताते हैं कि 'सत्यार्थप्रकाश' में वर्णित यह प्रसंग 'उपनिषद्' व 'सुश्रुत' के अनुसार है। अत: संसार को अज्ञान, अनाचार के गर्त्त में ले जाने वाले ऐसे गुरुओं से व उनके चेले-चेलियों से सावधान रहें।

गृहस्थ ब्रह्मचारी- जैसा कि पहले भी लिख चुके हैं कि विवाह के पश्चात् भी लम्पटता न करने वाला और पराई स्त्री को माता समझने वाला, स्वपत्नी से भी रज:निवृत्ति के बाद सन्तानोपत्ति के लिए शारीरिक संपर्क करने वाला (इस प्रवृत्ति के लिए बहुत ही पवित्र शब्द 'ऋतुदान' का प्रयोग हुआ है) गृहस्थ भी ब्रह्मचारी होता है।

इस विषय में 'मनु' का यह प्रमाण बड़ा प्रचलित है-

ऋतुकालाभिगामी स्यात्स्वदारनिरत: सदा।
ब्रह्मचार्य्येव भवति यत्र तत्राश्रमे वसन्॥

जो अपनी ही स्त्री से प्रसन्न और ऋतुगामी होता है वह गृहस्थ भी ब्रह्मचारी के सदृश है।

श्रीराम व श्रीकृष्ण ऐसे ही आदर्श गृहस्थ थे। गोपियों के साथ रासलीला, राधा के संग प्रेम-प्रसंग का खण्डन करते हुए आर्य विद्वानों ने श्रीकृष्ण को गृहस्थ ब्रह्मचारी सिद्ध किया है।

इस देश में हज़ारों ऐसे ऋषि, मुनि, महात्मा हुए जो संसार का अत्यन्त उपकार करने की और मोक्ष की सद्य: इच्छा से आजन्म ब्रह्मचारी रहे। लेकिन जैसा कि ऋषि दयानन्द सचेत करते हैं कि यह काम पूर्ण विद्वान् एवं योगी का ही है।

■■■

गतांग से आगे....

संध्या

सूर्य, चन्द्र, दिव, पृथ्वी, अन्तरिक्ष, स्वः

आचार्य धर्मवीर विद्यालंकार

आधिदैविक अर्थ, सृष्टि की उत्पत्ति पर विचार करते हुए सांख्यदर्शन का सिद्धान्त स्मरण आता है। ये षड् तन्मात्राएं हैं। सूर्य, अग्नि तन्मात्रा का, चन्द्र जल तन्मात्रा का, दिन वायु तन्मात्रा का, अन्तरिक्ष आकाश तन्मात्रा का और स्वः चित्त (मन) तन्मात्रा का प्रतीक है। 5 ज्ञान (रूप, रस, स्पर्श, गन्ध, शब्द) के मूल पञ्चतन्मात्राएं और उभय इन्द्रिय मन का मूल स्वः उत्पन्न हुए। इन तन्मात्राओं की उत्पत्ति के अनन्तर विविध प्रकार के, विभिन्न आकार, गुण धर्मो वाले पदार्थो की रचना, इनसे सम्भव होती है। इनसे इन गुणों को ग्रहण करने वाले 5 ज्ञानेन्द्रियाँ, 5 कामेन्द्रियाँ और इन 5 गुणों को धारण करने वाले पाँच महाभूत तथा चार अन्तःकरण (मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार) की उत्पत्ति होती है।

इस मन्त्र के "स्वः" शब्द से स्पष्ट है कि मन की उत्पत्ति पञ्चतन्मात्राओं से, पञ्चज्ञानेन्द्रियों के साथ मानना सम्यक् नहीं है। सत् से सत् की उत्पत्ति के सिद्धान्त के अनुसार, मन के गुण, कर्म, स्वभाव, पञ्चतन्मात्राओं तथा पाँच ज्ञानेन्द्रियों से सर्वथा भिन्न है। अतः मन की उत्पत्ति का मूल (अर्थात् बीज) इनसे भिन्न "स्वः" है। महत् का अर्थ बुद्धि और अहंकार का अर्थ लोकव्यवहार से ग्रहण किए जाने वाला "अहंभाव" भी नहीं है। अतः अन्तःकरण चतुष्टय नाम से प्रसिद्ध (मन, बुद्धि, चित्त एवं अहंकार) इन चारों की उत्पत्ति का स्वतः मूल से वेदमन्त्र बता रहा है।

(इस विषय में वेदज्ञ एवं विज्ञानवेत्ता विद्वानों के विचारों का स्वागत है।)

<u>पदार्थों की तीन अवस्थाएं- ठोस, द्रव और गैस</u>

"जल" को भारतीय शास्त्र एक तत्त्व मानते हैं। पाश्चात्य वैज्ञानिकों ने जल का विघटन किया है और पाया है कि इसमें दो तत्व- ओषजन और उदजन विद्यमान हैं, एक नहीं। इस कारण पाश्चात्य विद्वान् भारतीयों का उपहास करते हैं। भारतीय विद्वान् जब भूल गए हैं तो पाश्चात्य विद्वान् कैसे जानेंगे कि "हमारे शास्त्रों में जल" का अर्थ "पानी" नहीं है। जल का अर्थ है, द्रव (तरल-स्पुनपक) पदार्थ। न्याय- दर्शन में द्रव्यों की गणना में ठोस, द्रव और गैस को अलग-अलग नहीं बताया। आधुनिक वैज्ञानिक जिसे ठोस, द्रव और गैस कहता है, भारतीय विद्वान् उसे पृथ्वी, जल और वायु कहते हैं। यह पृथक् तथ्य है कि एक ही पदार्थ "नीर" की स्वाभाविक आकृति द्रव है। गरम करने पर वायु और ठण्डा करने पर ठोस आकार ग्रहण करता है। ये आकार "अग्नि" तत्व की मात्रा के कम या अधिक होने के कारण ही परिवर्तित होते हैं।

यह तथ्य इस बात से भी पुष्ट है कि प्रत्येक पदार्थ में पाँचों तत्व विद्यमान रहते हैं। इसे निम्न तालिका से समझाया जाता है-

	पृथ्वी	जल	वायु	आकाश	अग्नि	जोड़
पार्थिव पदार्थ	1/2	1/8	1/8	1/8	1/8	=1
जलीय पदार्थ	1/8	1/2	1/8	1/8	1/8	=1
वायव्य पदार्थ	1/8	1/8	1/2	1/8	1/8	=1
आग्नेय पदार्थ	1/8	1/8	1/8	1/8	1/2	=1
आकाशीय पदार्थ	1/8	1/8	1/8	1/2	1/8	=1

ऋषि- इस सूक्त का ऋषि अघमर्षण माधुच्छन्दस है। अघमर्षण का अर्थ ऊपर स्पष्ट किया है कि अघ (पाप) की वृत्ति एकान्त स्थान पाकर उभरती है। इन मन्त्रों में कहा गया है कि "अभीद्धतप" नामक परमेश्वर ने तृण से पर्वत और लोक लोकान्तर का निर्माण प्रखर ज्ञान से और अनन्त सामर्थ्य से सहज भाव से किया है। अतः

वह सर्वत्र विद्यमान है। यहाँ तक कि जगदीश्वर हमारे मन में छिपे भावों को भी जानता है, चाहे प्रत्यक्षरूप में हमने दुष्कर्म नहीं किए। इस ज्ञान को आत्मसात् (कि सृष्टि का निर्माता, एवं स्वामी तथा उसके कण-कण में विद्यमान जगदीश्वर है) कर लेने पर अघ (पाप) का धीरे-धीरे मर्षण (घिस-घिस कर नष्ट करना) होता है। अघ का मर्षण करने वाले ऋषि का नाम "अघमर्षण माधुच्छन्दस" हो गया।

माधुच्छन्दस

पाप-प्रवृत्ति की समाप्ति के अनन्तर पुण्य-प्रवृत्ति आरम्भ होती है तो जीवन में आनन्द ही आनन्द छा जाता है। माधुर्य, शान्ति, कल्याण के वातावरण के छा जाने को स्पष्ट करने वाला नाम है, मधुच्छन्दस। इससे भी उत्कृष्ट स्थिति में जब साधक पहुँचता है, तो वह "मधुच्छन्दस" कहलाता है। व्याकरण के अनुसार मधुच्छन्दस के पुत्र को माधुच्छन्दस कहते हैं। उत्तम सन्तान को पिता से उत्कृष्ट समझा जाता है। अतः मधुच्छन्दस की उत्कृष्ट स्थिति को माधुच्छन्दस कहा है।

मिठास अनेक पदार्थों में जानी गई है। दूध, दही, फलों में आम, द्राक्षा, आदि पदार्थों में अपने-अपने ढंग की मिठास और उनके गुण भिन्न-भिन्न हैं। इन सब में सर्वोत्तम मधु को माना गया है। कारण कि मधु रोगनिवारक तथा पुष्टिकारक भी है। 'आदित्यो वै देवमधु'- छान्दोग्य उपनिषद्।

अतः अघमर्षणों से माधुर्य का चहुं ओर छा जाना ही अघमर्षण माधुच्छन्दस वृत्ति वाले ऋषि का यह नाम हो गया। मनुष्य के जीवन का उद्देश्य यही है कि वह अघमर्षण माधुच्छन्दस बने।

छन्द- इस सूक्त में तीन मन्त्र हैं। तीनों में अनुष्टुप् छन्द है। परन्तु अनुष्टप् छन्द के तीन भेद हैं- प्रथम मन्त्र में ईश्वर की स्तुति "अभीद्धतप" द्वारा है। अतः इसमें विराडनुष्टप छन्द है। इस छन्द में एक मात्रा, सामान्य से अधिक होती है। दूसरे मन्त्र में सृष्टि-रचना की प्रक्रियास्वरूप संवत्सर और अहोरात्र के निर्माण का वर्णन है। इसमें सामान्य, नियत मात्रा वाला, अनुष्टुप छन्द है। तीसरे मन्त्र में सृष्टि निर्मित हो जाने का और धाता का वर्णन है। इसमें सामान्य से एक मात्रा कम वाले निचृदनुष्टप् छन्द का प्रयोग है। प्रकरण के अनुसार छन्द के आकार में कमी होती गई है।

सारांश- सृष्टि का निमित्त कारण (निर्माता) अनन्त ज्ञान और अनन्त सामर्थ्यवाला जगदीश्वर है जो सहज स्वभाव से निर्माण कार्य कर रहा है। इसका उपादान कारण मूल प्रकृति है। सृष्टि का निर्माण ऋत से, उपयोग या व्यवहार सत्य नियम से है। निर्माण प्रक्रिया में प्रकृति के परमाणुओं को प्राण और रयि का स्वरूप प्रदान किया जाता है। इस हेतु "संवत्सर" का सिद्धान्त काम करता है। विविध पदार्थों के मूल, (बीजरूप) अतिसूक्ष्मावस्था में षट् प्रकार के पदार्थों की रचना होती है। इन छह पदार्थों से ही "विसृष्टि" रची जाती है। वह निर्माता, इसका वशी भी है, धाता भी है। सर्वत्र, कण-कण में विद्यमान है। ऐसा जानने वाले को वह सर्वत्र विद्यमान दिखाई देता है। अतः वह पाप नहीं करता। उसके जीवन में चहुं ओर आनन्द, माधुर्य छाया रहता है। उस पर सदा कल्याण की वर्षा होती है।

मन्त्रार्थ का स्पष्ट रूप

अनन्त ज्ञान और सामर्थ्य वाले जगदीश्वर ने सृष्टि-रचना का विचार उपादान मूलप्रकृति से करने का किया। सर्वप्रथम ऋत और सत्य नियमों की स्थापना की। फिर प्रकृति अव्यक्त रूप से व्यक्त रूप में बदलने लगी। पहले स्थूल रूप, तदनन्तर परमाणुरूप हुआ। परमाणुओं के मिलाने हेतु संवत्सर नियम की स्थापना "वशी" (नियन्ता) जगदीश्वर ने की। तदनन्तर

परमाणुओं ने प्राण और रयि रूप धारण किया। तदनन्तर षट् तन्मात्राएँ क्रमशः रूप, रस, स्पर्श, गन्ध, शब्द और स्वः (अनन्तकरण चतुष्टय का मूल) बने। इन गुणों को धारण करने वाले पञ्चमहाभूत और स्वः बने, इनको ग्रहण करने वाली छः ज्ञानेन्द्रियाँ और 5 कर्मेन्द्रियाँ बनीं। धाता जगदीश्वर इस प्रकार की सृष्टि पहले कल्पों में करते रहे हैं, भविष्य में भी करेंगे और अब भी कर रहे हैं।

इस मन्त्र में जगदीश्वर को तीन नामों से स्मरण किया है। रचना के प्रारम्भ में "अभीद्धतप", रचना की क्रिया के समय वशी (नियन्ता) तथा रचना के अन्त में "धाता" नाम से स्मरण किया है।

उपसंहार

प्रथम प्रकरण में मनुष्य का अपने प्रति कर्तव्यों का प्रकरण पूरा हुआ। शरीर सुख तो शरीर के प्रत्येक अंग के स्वस्थ एवं निरोग होने से मिलता है। उनसे शान्ति तभी मिलती है, जब अंगों द्वारा किए गए कर्म वे यशः प्राप्ति भी हो। अतः प्रत्येक अंग अपने शुभ गुणों के शुद्ध स्वरूप का विकास करें। उपाय है प्रभु-चिन्तन और प्राणायाम सभी इन्द्रियों से जुड़ा मन भी पाप-प्रवृत्ति से निवृत्त हो और शुभ भावना में प्रवृत्त हो। अतः मन की शुभ कर्म में प्रवृत्ति और दुष्कर्म से निवृत्ति के प्रकरण का समावेश इस प्रकरण में किया है।

इति व्यक्तिगत कर्तव्यों का प्रथम प्रकरण।

अघमर्षण के बाद मध्यान्तर

प्रथम प्रकरण- व्यक्ति के अपने प्रति कर्तव्य की समाप्ति तथा दूसरे प्रकरण-सामाजिक कर्तव्य- से पूर्व साधक पुनः "शन्नो देवी." मन्त्र को जपकर तीन आचमन करें, तदनन्तर गायत्री मन्त्र का अर्थ पूर्वक विचार करें और तीन प्राणायाम करें। तदनन्तर दूसरा प्रकरण (मनः शुद्धि का द्वितीय भाग अर्थात् सामाजिक कर्तव्य बताने वाला प्रकरण) आरम्भ करें। तदनन्तर उपासना प्रकरण होगा। इस प्रकरण में महर्षि दयानन्द ने यहीं पर सगुणोपासना तथा निर्गुणोपासना को समझाया है। उन्हीं के शब्दों को यहाँ दिया जाता है-

संस्कृत में- "शन्नोदेवीरिति पुनराचमेत्। ततो गायत्र्यादिमन्त्रार्थान् मनसा विचारयेत्। पुनः परमेश्वरेणैव सूर्यादिकं सकलं जगद्रचितमिति परमार्थस्वरूपं ब्रह्म चिन्तयित्वा परं ब्रह्मं प्रार्थयेत्।"

भाषार्थ- शन्नो देवी० इस मन्त्र का जप कर तीन आचमन करें। तदनन्तर गायत्री आदि मन्त्रों के अर्थ विचारपूर्वक परमेश्वर की स्तुति अर्थात् परमेश्वर के गुण और उपकार का ध्यान कर, पश्चात् प्रार्थना करें। अर्थात् सब उत्तम कामों में ईश्वर का सहाय चाहे। और सदा पश्चात्ताप करें कि मनुष्य शरीर धारण करके हम लोगों से जगत् का उपकार कुछ भी नहीं बनता। जैसा कि ईश्वर ने सब पदार्थों की उत्पत्ति करके सब जगत् का उपकार किया है, वैसा हम लोग भी सबका उपकार करें। इस काम में परमेश्वर हमको सहाय करें कि जिससे हम लोग सबको सदा सुख देते रहें।

तदनन्तर ईश्वर की उपासना करें। सो दो प्रकार की है- एक सगुण और दूसरी निर्गुण। जैसे ईश्वर सर्वशक्तिमान्, दयालु, न्यायकारी, चेतन, व्यापक, अन्तर्यामी, सबका उत्पादक, धारण करने हारा मंगलमय, शुद्ध, सनातन, ज्ञान और आनन्द रूप है। धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष पदार्थों का देने वाला, सबका पिता, माता, बन्धु, मित्र, राजा, न्यायाधीश है। इत्यादि ईश्वर के गुण विचार पूर्वक उपासना करने का नाम सगुणोपासना है।

तथा निर्गुणोपासना इस प्रकार से करनी चाहिए कि ईश्वर अनादि, अनन्त है, जिसका आदि और अन्त नहीं। अजन्मा, अमृत्यु जिसका जन्म और मरण नहीं।

निराकार और निर्विकार जिसका आकार और जिसमें कोई विकार नहीं। जिसमें रूप, रस, गन्ध, स्पर्श, शब्द, अन्याय, अधर्म, राग, द्वेष, अज्ञान और मलीनता नहीं है। जिसका परिणाम छेदन, बन्धन, इन्द्रियों से दर्शन, ग्रहण और कम्पन नहीं होता। जो ह्रस्व, दीर्घ, शोकातुर कभी नहीं होता। जिसको भूख, प्यास, शीतोष्ण, हर्ष और शोक कभी नहीं होते। जो उल्टा काम कभी नहीं करता, इत्यादि जो जगत् के गुणों से ईश्वर को अलग जान के ध्यान करना, वह निर्गुणोपासना कहाती है।

इस प्रकार प्राणायाम करके अर्थात् भीतर के वायु को बल से नासिका के द्वारा बाहर फेंक के, यथाशक्ति बाहर ही रोक के, पुनः धीरे-धीरे भीतर लेके, पुनः बल से बाहर फेंक के रोकने से मन और आत्मा को स्थिर करके, आत्मा के बीच में जो अन्तर्यामी रूप से ज्ञान और आनन्द स्वरूप, व्यापक परमेश्वर है, उसमें अपने आपको मग्न करके अत्यन्त आनन्दित होना चाहिए। जैसे गोताखोर जल में डुबकी मार के, शुद्ध होकर बाहर आता है वैसे ही सब जीव अपने आत्माओं को शुद्ध ज्ञान और आनन्द स्वरूप व्यापक परमेश्वर में मग्न करके नित्य शुद्ध करें।"

"आचमन द्वारा, प्राणायाम से उत्पन्न उष्णता, समाप्त होती है।"

महर्षि दयानन्द ने ये विचार, अगले दो प्रकरण-मनसा परिक्रमा और उपस्थान की भूमिका रूप में लिखे हैं, ऐसा प्रतीत होता है। नए प्रकरण से पूर्व, "शन्नो देवी" मन्त्र द्वारा आचमन, गायत्री मन्त्र द्वारा बुद्धि को सत्कर्म की प्रेरणा और प्राणायाम द्वारा मन और बुद्धि की पवित्रता पूर्वक एकाग्रता सिद्ध करने का अभिप्राय है।

इति मनः शुद्धि-अघमर्षण-प्रकरण व्याख्यान।

क्रमशः- ■■■

सत्यार्थ प्रकाश के पन्नों में...

प्रेषक-सत्यदेव प्रसाद आर्य 'मरूत'

परमेश्वर के बिना कोई भी नहीं कर सकता। देखो! शरीर में किस प्रकार की ज्ञानपूर्वक सृष्टि रची है कि जिसको विद्वान लोग देखकर आश्चर्य मानते हैं। भीतर हाडों का जोड़, नाड़ियों का बन्धन, मांस का लेपन, चमड़ी का ढक्कन, प्लीहा, यकृत, फेफड़ा, पंखा कला का स्थापन, रुचिर शोधन, प्रचालन, विद्युत का स्थापन, जीव का संयोजन, शिरोरूप मूल रचन, कान, नखादि का स्थापन, आँख की अतीत सूक्ष्म शिरा का लाखन ग्रन्थन इन्द्रियों के मार्गों का प्रकाशन, जीव के जागृत, स्वप्न, सुषुप्ति अवस्था के भोगने के लिए स्थान विशेषों का निर्माण, सब धातु का विभाग करण, कला, कौशल स्थापनादि अद्‌भुत सृष्टि को बिना परमेश्वर के कौन कर सकता है? इसके अतिरिक्त नाना प्रकार के रत्न धातु से जड़ित भूमि, विविध प्रकार वटवृक्ष आदि के बीजों में अति सूक्ष्म रचना, असंख्य रक्त, हरित, श्वेत पीत कृष्ण चित्र, मध्य रूपों से युक्त पत्र, पुष्प, फल, मूल निर्माण, भिष्ट, क्षीर, कटुक, कपाय, तिफ, अम्लादि विचित्र रस सुगन्धादि युक्त पत्र, पुष्प, फल, अन्न कन्द मूलादि रचन, अनेकानेक क्रीड़ों, भूगोल, सूर्य, चन्द्रादि लोक निर्माण, धारण, भ्रमण, नियमों में रखना आदि परमेश्वर के बिना कोई भी नहीं कर सकता।

जब कोई किसी पदार्थ को देखता है तो दो प्रकार का ज्ञान उत्पन्न होता है। एक जैसा वह पदार्थ और दूसरा उसमें रचना देखकर बनाने वाले का ज्ञान है।

जैसे किसी पुरुष ने सुन्दर आभूषण जंगल में पाया, देखा तो विदित हुआ कि यह सुवर्ण का है और किसी बुद्धिमान कारीगर ने बनाया है। इसी प्रकार यह नाना प्रकार सृष्टि में विविध रचना, बनाना वाले परमेश्वर को सिद्ध करती है। ■■■

उपनिषदों की कहानियाँ

गताङ्क से आगे....

पराजय

पं. जगत कुमार शास्त्री

प्राचीनकाल में जनश्रुति नाम का एक राजा बहुत धार्मिक था। वह श्रद्धा पूर्वक बहुत दान देता था और प्रतिदिन बहुत-सा भोजन गरीबों में बँटवाया करता था। अपने राज्य में यात्रियों की सुख-सुविधा के लिए उसने बहुत-सी धर्मशालायें बनवा रखी थीं। प्रजा के हित के लिए उसने और भी कई प्रकार के प्रबन्ध कर रखे थे। यह सब होने पर भी वह राजा नाम अर्थात् अपनी प्रसिद्धि का भूखा था।

एक बार दो परम-हंस-तत्वज्ञानी साधु आकर राजा के नगर में ठहरे। उन दोनों की बातें राजा ने सुनीं। एक ने दूसरे से कहा, "भाई भद्रसेन! देखो, यह राजा जनश्रुति बड़ा धर्मात्मा है। सूर्य के प्रकार के समान इसकी कीर्ति सर्वत्र सुप्रकाशित हो रही है। कभी भूलकर भी तुम इसकी निन्दा न करना, अन्यथा इसी एक अपराध से तुम भस्म हो जाओगे।"

दूसरे परम-हंस ने हँसकर उत्तर दिया, "वाह भाई वाह, तुम भी किस की प्रशंसा कर रहे हो? क्या यह साधारण-सा राजा उस गाड़ी वाले सुयुग्वा रैव्क से भी बढ़कर है?"

इस पर पहले साधु ने पूछा, "वह सुयुग्वा रैव्क कैसा है?"

दूसरे साधु ने उत्तर दिया, "प्रजा जो कुछ भी शुभ कर्म करती है, उस सब कुछ का शुभ फल उसे प्राप्त होता है, जैसे जुए में हारने वाले का सब धन जीतने वाले का होता है। वह सब प्रकार के शुभ कर्मों का मूर्त-रूप है और सब प्रकार की शुभ प्रगतियों का प्रवर्त्तक है। यह राजा जो कुछ करता और जानता है, वे सभी कर्म वह कर चुका है और जानता है। यह राजा तो मान-बढ़ाई का भूखा है, परन्तु उस गाड़ी वाले को तो मान-बढ़ाई की कुछ भी इच्छा नहीं है। अब तुम स्वयं ही यह अनुमान कर लो कि उस गाड़ी वाले की बढ़ाई कैसी है?"

उन साधुओं के पारस्परिक वार्तालाप को सुनकर राजा को रातभर नींद नहीं आई। सवेरा होने पर राजा ने अपने सारथी से कहा, "मित्र! आज रात को मैंने ऐसा वार्तालाप सुना है। अतः तू जा और उस गाड़ी वाले सुयुग्वा रैव्क के विषय में विस्तृत जानकारी प्राप्त करके आ।"

सारथी गया और कुछ दिन बाद आकर बोला, "महाराज! बहुत खोज करने पर भी उस महात्मा का मुझे तो कुछ भी पता नहीं मिला।"

राजा ने कहा, "अब तू फिर जा और विशेष रूप से ऐसे स्थानों पर जाकर खोजकर, जहाँ पर महात्मा लोग एकान्तवास किया करते हैं।"

दूसरी बार खोज करते हुए सारथी ने देखा कि एक गाड़ी के नीचे एक मनुष्य बैठा है और अपने चिह्न को खुजला रहा है। पास जाकर पूछने पर मालूम हुआ कि यही गाड़ी वाला सुयग्वा रैव्क है। इस पर वापिस आकर सारथी ने राजा को सूचित कर दिया।

राजा छः सौ गौवें, रत्नों की माला और खच्चरों का एक सुन्दर रथ, भेंट में देने के लिए और भी नाना प्रकार के पदार्थ साथ लेकर उस महात्मा के दर्शनों के लिए चला। समीप जाकर राजा ने बड़ी भक्तिभाव से नमस्कार किया और कहा, "भगवन्! मेरी इस तुच्छ भेंट को स्वीकार करें और मुझे भी उस देव की उपासना का उपदेश दें, जिसकी उपासना आप स्वयं किया करते हैं।"

महात्मा ने बहुत कठोरता और उपेक्षा के साथ उत्तर दिया, "अरे शुद्र! ये गौवें, यह माला और ये रथ इत्यादि सब, तू अपने ही पास रख। मुझे इनकी आवश्यकता नहीं है।"

राजा ने समझा कि थोड़ी मात्रा में होने के कारण ही महात्मा ने उसकी भेंट-सामग्री को स्वीकार नहीं किया है। अतः वह दूसरी बार एक हज़ार गौवें,

बहुमूल्य रत्नों की माला, बहुत बढ़िया घोड़ा-गाड़ी, अपनी राजकुमारी और बहुत-से अन्य पदार्थ लेकर महात्मा की सेवा में पहुँचा और बोला, "भगवन्! मेरी इस भेंट को स्वीकार करें और मुझे उपदेश देने की कृपा करें।"

तब राजकुमारी की ओर संकेत करके महात्मा ने कहा, "यद्यपि तू इतनी सामग्री लाया है, फिर भी मैं तो इस राजकुमारी की बदौलत ही तुझे उपदेश दूँगा।"

यह कहकर महात्मा ने राजा की भेंट स्वीकार कर ली और राजा को यथोचित्त उपदेश दिया।

उपदेश को सुनकर राजा ने महात्मा को कई गाँव और भी भेंट किए।

विचार

यह कथा छान्दोग्योपनिषद् के चौथे खण्ड के पहले और दूसरे प्रपाठक में है। जनश्रुति यद्यपि एक धार्मिक राजा है, परन्तु वह प्रचार-प्रसिद्धि और मान-बढ़ाई का भूखा है। लोकेष्णा की यही लत उसे बुरे मार्ग पर ले जाती है। वह न केवल धन का अपव्यय करता है, अपितु अपने ही हाथों से अपनी बेटी के भविष्य को भी बरबाद कर डालता है। सनकी आदमियों का हाल ऐसा ही होता है। सनक के साथ भोलेपन का होना तो और भी अधिक हानिकारक है।

एक साधु जनश्रुति की प्रशंसा करता है। दूसरा उसे साधारण राजा ही कहता है और, उसकी तुलना में एक अप्रसिद्ध व्यक्ति को, जो कि कोढ़ी भी है, को अधिक प्रशंसनीय बतलाता है। उनकी बातों को सुनकर राजा के मन में एक उत्सुकता जाग उठती है। उपदेश और उपासना के चक्कर में पड़कर राजा एक गलत रास्ता पकड़ता है और आगे बढ़ता है। अन्त में वह अपनी पुत्री को भी एक भीख माँगने वाले कोढ़ी को सौंप देता है।

राजा महात्मा की सेवा में पहुँचता है। पहले शिष्टाचार, भेंट, पदार्थ, नम्रता-प्रदर्शन आदि सबके सब महात्मा के सामने व्यर्थ हो जाते हैं। किन्तु राजा के मन की मुराद पूरी नहीं होती। महात्मा राजा को "शूद्र" कहकर गाली देता है और झिड़क कर उसके साथ बातचीत करने से भी इन्कार कर देता है। उपनिषदों के अनुवाद करने वाले कुछ लोगों ने लिखा है कि प्राचीन काल में किसी को शूद्र कहकर सम्बोधित करना भी एक शिष्ट-सम्बोधन समझा जाता था। हम समझते हैं कि ऐसा सोचना गलत है। जब महात्मा ने बात-चीत करने से भी इन्कार कर दिया, तब सभ्यता और सम्मान की बात ही क्या रह जाती है?

राजा दूसरी बार फिर आता है। धन की मात्रा इस बार बहुत बढ़ा दी गई है। भेंट के सामान में राजकुमारी भी शामिल कर दी गई है। त्यागी, तपस्वी, निर्मोही महात्मा पर औरत का साया पड़ता है। मानो उसकी बुद्धि पर पर्दा पड़ जाता है। राजा की इच्छा पूरी हो जाती है। उसे उपदेश मिल जाता है।

महात्माओं की संगति, सेवा और उनकी उचित आवश्यकताओं की पूर्ति उचित तो है, परन्तु पहले यह भी पता लगा लेना चाहिए कि महात्मा, वास्तव में महात्मा है, या नहीं? जिसको महात्मा समझा जा रहा है, वह जोगी के भेष में कोई रावण तो नहीं है? राजा जनश्रुति ने जो बुरा उदाहरण प्रस्तुत किया था, उसने न जाने आज तक कितने भले घरों को बरबाद किया होगा।

औरत के जाल में फँस जाना और राजा के सामने ही राजकुमारी के मुँह को चूम लेना, महात्मा का पतन तो है ही, और यह किसी प्रकार भी प्रशंसनीय नहीं, फिर भी उसे पूज्य महात्मा और ऋषि माना जाता है। इसे हम अंधी श्रद्धा के सिवा और क्या समझें? इसका कारण सम्भवत: यही है कि उपनिषद्कार ने घटनाओं को प्रस्तुत करके, उनसे परिणाम निकालने का काम पाठकों के ऊपर ही छोड़ दिया है और पढ़ने वालों को टीकाकारों ने पथ-भ्रष्ट किया है। कैसे खेद की बात है कि उपनिषदों के अधिकांश टीकाकारों ने स्पष्टता से काम न लेकर इस कोढ़ी की कहानी में से भी ब्रह्म-ज्ञान को खोज निकाला है। परन्तु "वैदिक-सम्पत्ति" नामक महान् और सुप्रसिद्ध

ग्रन्थ के लेखक श्री पण्डित रघुनन्दन शर्मा जी ने बहुत अधिक विस्तार के साथ राजा जनश्रुति के भोलेपन और महात्मा के भ्रष्टाचार का मातम मनाया है।

यद्यपि महात्मा सदाचार के ऊँचे स्तर पर पूरा नहीं उतरता, फिर भी हम स्वीकारते हैं कि वह भी एक मनुष्य है। उसमें भी मानवी-दुर्बलताएँ हैं। वर्तमान कहानी में वह एक राजकुमारी की ओर आकर्षित होता है, परन्तु राजा खुद राजकुमारी को उसके पास लाता है। गलियों में घूम-घूम कर महात्मा ने किसी की इज़्ज़त पर डाका नहीं डाला है। मान-बढ़ाई का भूखा बाप अपनी पुत्री एक कोढ़ी को सौंप देता है। नारी की मोहनी मूर्त ब्रह्म-तेज पर विजय प्राप्त करती है।

छान्दोग्योपनिषद् में इस कथा को क्यों शामिल किया गया है? इसका कारण सम्भवत: यही है कि उपासना और तत्वज्ञानके प्रेमी राजा की भूल और महात्मा के पतन से शिक्षाग्रहण करें। इसके अतिरिक्त कोई दूसरा उचित कारण नहीं हो सकता।

.....क्रमशः ■■■

दशानन

डॉ. नरेन्द्र कुमार बस्सी (बठिंडा पंजाब भारत)

मैं दशानन एक प्रश्न लेकर हूँ आया।
कितने वर्षों से इंसान तूने मुझे है जलाया॥
आज फिर मुझे, मेरे भाई व पुत्र को जलाएगा।
बुराई पर अच्छाई की जीत बताएगा॥
मुझे जलाकर खूब खुशी मनाते हो।
अपने दुष्कर्मों को स्वयं ही भूल जाते हो॥
मैं वेदों का ज्ञाता और अथाह बलवान।
मेरे आगे शीश न उठा पाया कोई इंसान॥
हर तरफ मेरी धाक, क्या धरती, पाताल या आसमान।
शिव का परम भक्त, रावण संहिता लिख बढ़ाई शान॥
जिधर भी रखा कदम सब कुछ हिला डाला।
शक्ति के संग अहंकार भी खूब पाला॥
माना शिव धनुष मैं स्वयंवर में उठा न पाया।
इस हार ने भी मेरा अहंकार और बढ़ाया॥
वक्त बीता, राम बनवास काटने वन में आए।
संग सीता और भाई लक्ष्मण को लाए॥
उद्दंडता मेरी बहन ने की और नाक कटवाया।
बस इस घटना से मैं बहुत तिलमिलाया॥
मामा मारीच के जाल में राम, लक्ष्मण को उलझाया।
बदल भेस साधू का, सीता को हर लाया॥
बस यही जीवन की सबसे बड़ी भूल हुई।
सारे वेद, सारी शक्तियाँ यहीं पर क्षीण हुई॥
अहंकारी था, माँ की एक न चली।
न बीवी की न भाईयों की कोई बात लगी भली॥
रामदूत हनुमान से न टकरा पाया।
अंगद के आगे भी कुछ कर न पाया॥
विभीषण जैसे भाई को दिया देश निकाला।
सारा ब्रह्माण्ड था चाहे मेरा देखा भाला॥
युद्ध स्थली सजी घनघोर युद्ध हुआ।
राम के हाथों मैं गति को प्राप्त हुआ॥
मुझे राम ने नहीं, अहंकार ने मारा।
मैंने जीवन में सच्चाई को था नकारा॥
मैंने जो किया उसकी सज़ा पाई।
कितने लम्बे अर्से से मुझे जलाते आ रहे हो भाई॥
मेरे अहंकार से शिक्षा ले सभी को समझाते।
किसी भी नारी का अपमान न कर पाते॥
तुम भी बहुत पीछे नारी सम्मान छोड़ आए हो।
आज फिर मुझे जलाने आए हो॥
जो भी तुम में राम है, वो आगे आए।
राम वाला बाण मुझ पर चलाए॥
आए हो तो एक सीख साथ ले जाना।
नारी सम्मान में कभी कमी मत लाना॥

चतुर्दिवसीय वेद प्रचार-प्रसार महोत्सव का सहर्षोल्लास समापन

''वेद संसार का प्रथम ग्रन्थ और ज्ञान-विज्ञान का अथाह भण्डार है''

आचार्य सानन्द जी

महर्षि दयानन्द सरस्वती जी के द्विशताब्दी जन्मोत्सव के उपलक्ष में आर्य समाज मन्दिर धामावाला के सौजन्य से चतुर्दिवसीय वेद प्रचार-प्रसार महोत्सव के समापन का कार्यक्रम बड़ी धूम-धाम व सहर्षोल्लास दिनांक 15.10.2023 को सम्पन्न हुआ। वेद प्रचार प्रसार का कार्यक्रम दिनांक 12.10.2023 से 15.10.2023 तक प्रात: एवं सायंकालीन, देहरादून नगर के विभिन्न क्षेत्रों के आर्य जनों के घरों में किया गया जिसमें आचार्य विद्यापति शास्त्री जी द्वारा यज्ञ, विश्व विख्यात भजनोपदेशिका बहन कल्याणी जी के भजनों के तथा आर्य जगत के विख्यात वैदिक विद्वान आचार्य सानन्द जी द्वारा प्रवचनों के माध्यम से प्रेरणादायक वेदवाणी की गंगा में श्रोताओं ने गोते लगाए और आत्मिक एवं आध्यात्मिक लाभ प्राप्त किया।

हिसार से पधारी आर्य जगत की सुप्रसिद्ध भजनोपदेशिका बहन कल्याणी जी ने उपदेश व मधुर भजनों के माध्यम से विभिन्न सामाजिक विषयों पर प्रकाश डाला। उन्होंने कहा कि जीवित माता-पिता की सेवा ही श्राद्ध कहलाता है, सुख-दु:ख की प्राप्ति मनुष्य के कर्मो का फल ही है, महर्षि दयानन्द ने सामाजिक सुधार जैसे विधवा विवाह, सती प्रथा का उन्मूलन, नारी शिक्षा, चरित्र निर्माण, आदि सामाजिक सुधारों के लिए जनमानस को जागरुक किया। उन्होंने ईश्वर भक्ति, देश भक्ति, ऋषि दयानन्द जी के भजनों, उपदेशों व संगीत के माध्यम से वातावरण को भक्तिमय बना दिया जिसका उपस्थित आर्य जनों ने भरपूर आनन्द उठाया।

चतुर्दिवसीय वेद प्रचार-प्रसार महोत्सव के कार्यक्रम में पानीपत से पधारे आचार्य सानन्द जी ने वेद मन्त्रों के आधार पर वेद की महिमा, गायत्री मन्त्र की व्याख्या, कर्मफल सिद्धांत, कर्मो के प्रकार आदि विषयों पर चर्चा करते हुए कहा वेद संसार का प्रथम ग्रन्थ है और ज्ञान-विज्ञान का अथाह भण्डार है। ईश्वर के सत्य स्वरूप को जानने के लिए वेदों को जानना आवश्यक है। पिछले जन्म के कर्मो तथा संस्कारों के आधार पर मनुष्य के रूप में नया जन्म होता है। प्रत्येक मनुष्य को सत्य को अपनाते हुए व्रत-नियम का पालन करते हुए जीवन व्यतीत करना चाहिए, तभी मोक्ष की प्राप्ति हो सकती है। वेद की राह पर चलने वाला व्यक्ति सच्चे ईश्वर को पा सकता है।

आर्य समाज धामावाला द्वारा आयोजित चतुर्दिवसीय वेद प्रचार-प्रसार के अन्तिम दिवस के प्रात:कालीन कार्यक्रम का आयोजन आर्य समाज धामावाला में सम्पन्न हुआ। सायंकालीन सत्र का आयोजन आर्य समाज कौलागढ़ में किया गया।

देहरादून नगर के भिन्न-भिन्न क्षेत्र में जिन आर्यजनों के निवास पर कार्यक्रम आयोजित किया गया उनके नाम हैं:- ?

1. श्रीमती रीता शेखरी जी एवं श्री प्रमोद शेखरी जी
2. श्रीमती पुनीता जी
3. श्रीमती अंजू मोहन जी एवं श्री हरी मोहन रस्तोगी जी
4. श्रीमती सविताढंड जी एवं श्री अरुण ढंड जी
5. श्रीमती रेखा आर्या जी एवं श्री चन्द्रपाल सिंह जी
6. श्रीमती उमा आर्या जी एवं डॉ. सत्येन्द्र कुमार आर्य जी
7. श्रीमती मधु आर्या जी एवं श्री हर्षवर्द्धन आर्य जी।

सभी यजमान परिवारों को उनके सहयोग के लिए स्मृति चिह्न भेंट किए गए।

कार्यक्रम की शोभा बढ़ाने में जिन आर्यजनों ने भाग लिया उनके नाम हैं- श्री ज्ञान चन्द गुप्ता जी, श्रीमती शीला गुप्ता जी, श्री सतीश चन्द जी, श्री धीरेन्द्र मोहन सचदेव जी, श्रीमती नवीन सचदेव जी, श्री ओम प्रकाश नांगिया जी, श्रीमती सुमिता चड्ढा जी, श्रीमती सुनीता गुरुवारा जी, श्रीमती शैल ढींगरा जी, श्रीमती अरुणा गुप्ता जी, श्रीमती मृदुला गुलाटी जी, श्री लक्ष्मण दास आर्य जी, श्री विश्वमित्र गोगिया जी, श्री नारायण दत्त पंचाल जी, श्री अश्विनी पंचाल जी, श्री अलोक कुमार जी, श्री कुलभूषण कठपालिया जी, श्री अशोक कुमार जी, श्री प्राण नाथ खुल्लर जी, श्रीमती सुदेश भाटिया जी, श्रीमती रेखा आर्य जी, श्री चन्द्र पाल सिंह जी, श्री पवन कुमार जी, श्री बसंत कुमार जी, श्री अशोक नारंग जी, श्री आदर्श कुमार अग्रवाल जी, श्री धर्मवीर तलवार जी,

श्रीमती सोनिका वालिया जी एवं श्री वालिया जी, विकास नगर, श्रीमती संगीता चड्ढा जी, करणपुर, श्रीमती एवं श्री चन्द्र प्रकाश जी, मंत्री प्रांतीय सभा, श्री दयानन्द तिवारी जी, पूर्व प्रधान प्रांतीय सभा, श्री प्रताप सिंह रोहिला जी, श्री सुभाष चन्द्र गोयल जी तथा आर्य समाज कौलागढ़, स्त्री आर्य समाज करणपुर, आर्य समाज लक्ष्मण चौक तथा अन्य समाजों के पदाधिकारी व सदस्य गण।

श्री नवीन भट्ट जी, मंत्री ने कार्यक्रम का संचालन बहुत ही सुन्दर ढंग से सम्पन्न करवाया। श्री सुधीर गुलाटी जी ने वैदिक विद्वान के उपदेशों, भजनोपदेशिका के भजनों तथा यज्ञ ब्रह्मा का संक्षिप्त वर्णन करते हुए उनके मार्गदर्शन व प्रस्तुति पर आभार प्रकट किया। मुख्य अतिथि माननीय खजान दास जी विधायक तथा विशिष्ट अतिथियों का अभिनन्दन करते हुए उनके आगमन पर कार्यक्रम की शोभा बढ़ाने और सहयोग के लिए धन्यवाद प्रकट किया। उन्होंने सभी यजमान परिवार, दान-दाताओं, श्रोताओं पदाधिकारियों, सदस्यों व अन्य श्रोताओं का उनके योगदान के लिए धन्यवाद प्रकट किया। शांति पाठ के उपरान्त ऋषि लंगर के साथ महोत्सव का सफलतापूर्वक समापन हुआ।

सुधीर गुलाटी

(प्रधान) आर्य समाज मन्दिर, धामावाला

■■■

श्रद्धेय यशपाल आर्य जी

जन्म शताब्दी के अवसर पर पुण्य स्मरण

दयानन्द तिवारी

आज हम अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर महर्षि दयानन्द सरस्वती जी महाराज जी की द्विजन्मशताब्दी श्रद्धा और उत्साह के साथ मना रहे हैं। उत्तराखण्ड के आर्यजन इसके साथ ही महर्षि के बताए मार्ग पर चलने वाले आर्य समाज के सिपाही, वेद मार्ग के पथिक और यशस्वी लेखक स्वर्गीय यशपाल आर्य जी की जन्म शताब्दी भी मना रहे हैं। आपका पूरा जीवन वैदिक सिद्धांतों के प्रचार-प्रसार के लिए समर्पित रहा। आप उच्च कोटि के लेखक, चिंतक, विचारक, कुशल संगठनकर्त्ता, ओजस्वी वक्ता तथा सफल व्यवसायी थे। उनके जीवन के पृष्ठ खोलने पर उक्त समस्त गुणों के दर्शन होते हैं।

तत्कालीन संयुक्त प्रान्त पंजाब के एक छोटे-से कस्बे सोलन में आपका जन्म वर्ष 1924 में हुआ था। अभी यह सोलन हिमाचल प्रदेश में है। वर्ष 1940 में परिस्थितिवश देहरादून आ गए तथा अपने छोटे भाई देवदत्त आर्य जी के साथ मिलकर आर्य वस्तु भण्डार नाम से एक छोटी-सी दुकान शुरु कर दी। आर्य समाज के संस्कार आपको जन्म से ही प्राप्त हुए थे। 1947 में आप आर्य समाज, धामावाला के मंत्री चुने गए। उसके पश्चात् धामावाला आर्य समाज जीवन भर उनके सामाजिक कार्यकलापों का केन्द्र बना रहा। वर्ष 1972-73 में आर्य समाज धामावाला के पुराने भवन को तोड़कर नए भवन का निर्माण कार्य सम्पन्न हुआ। वर्ष 1980 में जब आर्य समाज धामावाला की स्थापना शताब्दी मनाई गई, उस अवसर पर स्मारिका का भी प्रकाशन किया गया। इस स्मारिका में आर्य समाज धामावाला तथा जिले की आर्य समाजों का इतिहास अत्यन्त परिश्रम और खोज के साथ लिखा गया। इसका समस्त श्रेय श्रद्धेय यशपाल आर्य को ही जाता है। बड़े-बड़े विद्वानों व आर्य समाजों के सुधि पाठकों द्वारा इसकी भूरी-भूरी प्रशंसा की गई।

श्री यशपाल आर्य जी बहुत ओजस्वी व प्रभावशाली वक्ता थे। देहरादून जनपद के विभिन्न आर्य समाजों में तो आपके व्याख्यान होते ही थे परन्तु उत्तर प्रदेश, दिल्ली आदि प्रदेशों तक के आर्य समाजों में आपको विशेष रूप से व्याख्यान के लिए बुलाया जाता था। आपकी व्याख्यान की शैली बड़ी प्रभावशाली होती थी। श्रोता आपको मंत्र-मुग्ध होकर सुनते थे। वक्ता के साथ-साथ आप सुयोग्य लेखक भी थे। आपने छोटी-बड़ी लगभग 22 पुस्तकें लिखी हैं। पुस्तकों के शीर्षक भी बड़े रोचक हैं यथा- "क्या मनचाही संतान प्राप्त हो सकती है?", "विश्व

पहेली की कुंजी", "आ बैल मुझे मार", "मौलाना तर्क के तराजू पर", "बीति ताहि बिसरि दे आगे की सुधि लेई", "कौन कहता है आर्य समाज मूर्ति पूजा को नहीं मानता है" आदि-आदि। सभी पुस्तकें पठनीय हैं।

संगठनकर्त्ता के रूप में श्रद्धेय यशपाल आर्य जी हम सबके लिए मार्गदर्शक हैं। आर्य समाज, धामावाला को आपने नई ऊँचाईयाँ दीं। आपके कार्यकाल में नए-नए कार्यक्रम सम्पन्न हुए। आपके द्वारा संचालित 'शंका समाधान' का कार्यक्रम बहुत लोकप्रिय हुआ। स्व. देवदत्त बाली जी ने आपके बारे में लिखा था, "भाई यशपाल जी सारे जिले के आर्यवीर दलों के बौद्धिक नायक नियुक्त किए गए और आप हैरान होंगे यह जानकर कि उस काल में आर्यवीर दल की नगर की समस्त शाखाएँ दो बार सामूहिक रूप से लगीं। एक बार माता वाले बाग में तथा दूसरी बार गुरुनानक स्कूल में और दोनों ही बार उपस्थित आर्यवीरों की संख्या 2400 से ऊपर थी। भाई जी की यह आदत रही है, स्वभाव है कि जिस काम को करना उसे पूरे उत्साह से करना है, जान लगाकर करना है।"

वर्ष 1996 से पृथक उत्तराखण्ड राज्य के लिए आन्दोलन की तीव्रता को देखते हुए यह लगने लगा था कि निकट भविष्य में शीघ्र ही पृथक उत्तराखण्ड राज्य बन जाएगा। अत: आपने उत्तराखण्ड स्तर पर आर्य प्रतिनिधि सभा की स्थापना के लिए इस भू-भाग में स्थित विभिन्न जनपदों के आर्य समाजों के पदाधिकारियों व वरिष्ठतम आर्यजनों से विचार-विमर्श प्रारम्भ कर दिया था। इन्हीं तैयारियों के फलस्वरूप 9 नवम्बर, 2000 को पृथक उत्तराञ्चल राज्य के गठन के साथ ही आर्य प्रतिनिधि-सभा उत्तराञ्चल की भी स्थापना हो गई। सर्वसम्मति से आपको सभा का प्रधान चुना गया। दिसम्बर 2000 में ही आपके प्रयासों से सभा का रजिस्ट्रेशन भी हो गया। बाद में सरकार ने राज्य का नाम परिवर्तित कर उत्तराञ्चल के स्थान पर उत्तराखण्ड कर दिया और इसे देखते हुए आर्य प्रतिनिधि सभा ने भी उत्तराञ्चल के स्थान पर आर्य प्रतिनिधि सभा उत्तराखण्ड नाम को स्वीकृति दे दी। प्रान्तीय सभा का मुख्यालय आर्य समाज मन्दिर, धामावाला को बनाया गया। कुछ समय के पश्चात् आर्य प्रतिनिधि-सभा का मुख-पत्र (मासिक) अमृतपथ का भी प्रकाशन प्रारम्भ किया गया जो आज तक नियमित रूप से प्रकाशित हो रहा है। कुछ निहित स्वार्थ से ग्रसित लोगों ने आर्य प्रतिनिधि सभा के पंजीकरण को निरस्त कराने, प्रान्तीयसभा तथा आर्य समाज मन्दिर, धामावाला पर कब्ज़ा करने का भी कुत्सित प्रयास किया परन्तु अपने-अपने सूझ-बूझ और विवेक से स्वार्थी लोगों के प्रयास को असफल कर दिया। जीवन भर आपने विपरीत परिस्थितियों में भी कभी अपना विवेक व उत्साह कम नहीं होने दिया।

श्रद्धेय यशपाल आर्य जी के परिवारजनों ने गत दिनों उनकी जीवनी "जीवन यात्रा" का प्रकाशन किया है जिसका लोकार्पण दिनांक..... को एक भव्य कार्यक्रम में किया गया। "जीवन यात्रा" पठनीय ग्रन्थ है। आर्य समाज के प्रारम्भिक दिनों में आर्य समाजियों को कैसा-कैसा विरोध झेलना पड़ता था इसकी झलक भी इस पुस्तक में देखने को मिलती है। आप एवं आपके परिवार की वैदिक सिद्धांतों व आर्य समाज के लिए दृढ़ निष्ठा के भी दर्शन इस पुस्तक के माध्यम से होते हैं। अन्य विश्वासों, रूढ़ियों और कुप्रथाओं का आपने व आपके परिवार ने जो विरोध किया और महर्षि दयानन्द की शिक्षाओं का अपने व्यवहार में पालन किया, उसका रोचक विवरण पुस्तक में पढ़ने को मिलता है। एक सफल व्यवसायी के रूप में भी हम श्रद्धेय यशपाल जी को इस पुस्तक में देखते हैं।

श्रद्धेय यशपाल आर्य जी बहुआयामी व्यक्तित्व के धनी थे। आपका सम्पूर्ण जीवन वैदिक सिद्धांतों के प्रति समर्पित रहा आपने जो कहा उस पर पूर्ण विश्वास भी किया तथा व्यवहार में भी वही किया। आपके द्वारा किए गए कार्यों का लाभ आज हम सब प्राप्त कर रहे हैं। जन्म शताब्दी के अवसर पर उत्तराखण्ड के सभी आर्यजनों एवं 'अमृत पथ' परिवार की ओर से आपको सादर विनम्र श्रद्धाञ्जलि।

■■■

आओ स्मरण करें महान पुरूषों को.....

ठाकुर रोशन सिंहः 22 जनवरी 1892-19 दिसम्बर 1927

ठाकुर रोशन सिंह का जन्म 22 जनवरी 1892 में उत्तर प्रदेश के शाहजहांपुर के नवादा गांव में हुआ था। उनके पिता का नाम ठाकुर जंगी सिंह तथाा उनकी माता का नाम कौशल्या देवी था। वे अपने पांच भाई-बहनों में सबसे बड़े थे। हिन्दू धर्म, आर्य संस्कृति, भारतीय स्वाधीनता और क्रान्ति के विषय में अपने ठाकुर रोशन सिंह सदैव पढ़ते व सुनते रहते थे। ईश्वर पर उनकी आगाध श्रद्धा थी। हिन्दी, संस्कृत, बंगला और अंग्रेजी इन सभी भाषाओं को सीखने के वे बराबर प्रयत्न करते रहते थे। स्वस्थ, लम्बे, तगड़े सबल शरीर के भीतर स्थिर उनका हृदय और मस्तिष्क भी उतना ही सबल और विशाल था।

ठाकुर रोशन सिंह 1929 के आस-पास असहयोग आन्दोलन से पूरी तरह प्रभावित हो गए थे। वे देश सेवा की और झुके और अंततः राम प्रसाद बिस्मिल के संपर्क में आकर क्रांति पथ के यात्री बन गए। यह उनकी ब्रिटिश विरोधी और भारत भक्ति का ही प्रभाव था कि वे बिस्मिल के साथ रहकर खतरनाक कामों में उत्साह पूर्वक भाग लेने लगे। 'काकोरी काण्ड' में भी वे सम्मिलत थे और उसी के आरोप में वे 26 सितंबर 1925 को गिरफ्तार किये गये थे और काकोरी कांड में उन्हें दोषी माना गया और फांसी की सजा सुनाई गई।

जेल जीवन में पुलिस ने उन्हें मुखबिर बनाने के लिए बहुत कोशिश की, लेकिन वे डिगे नहीं। चट्टान की तरह अपने सिद्धान्तों पर दृढ़ रहे। काकोरी काण्ड के सन्दर्भ में रामप्रसाद बिस्मिल, राजेन्द्रनाथ लाहिड़ी और अशफ़ाक उल्ला खां की तरह ठाकुर रोशन सिंह को भी फांसी की सजा दी गई थी। यद्यपि लोगों का अनुमान था की उन्हें कीर्ति भी मिलनी थी और उसके लिए फांसी ही श्रेष्ठ माध्यम थी। फांसी की सजा सुनकर उन्होंने अदालत में 'ओंकार का उच्चारण किया औ फिर चुप हो गए। 'ओ३म्' मंत्र के वे अनन्य उपासक थे।

ठाकुर रोशन सिंह काकोरी ट्रेन लूट में शामिल ही नहीं थे।

फिर भी उन्हें गिरफ्तार किया गया और मोहनलाल के खून में मौत की सजा सुनाई गयी। जब सजा सुनाई जा रही थी तब जज ने IPC के सेक्शन 121(A) और 120 (B) के तहत पांच साल की सजा सुनाई थी, और रोशन सिंह इंग्लिश शब्द 'पांच साल' आसानी से समझ सकते थे, सजा सुनने के बाद ठाकुर रोशन सिंह ने जज से उन्हें पंडित राम प्रसाद बिस्मिल के गुनाह जितनी सजा ना सुनान की सिफारिश भी की थी, लेकिन तभी विष्णु शरण दुब्लिश ने उनके कानों में कहा, ''ठाकुर साहेब! आपको पंडित राम प्रसाद बिस्मिल जितनी ही सजा मिलेगी'' दुब्लिश के मुह से यह शब्द सुनते ही ठाकुर राशेन सिंह अपनी कुर्सी से उठ खड़े हुए और पंडित को गले लगाते हुए खुशी से कहा, '' ओये पंडित! क्या तुम फांसी तक भी अकेले जाना चाहोगे ? ठाकुर अब तुम्हे और अकेला नहीं छोड़ना चाहता। यहां भी तुम्हारे ही साथ जायेगा।''

'मलाका' जेल में रोशन सिंह को आठ महीने तक बड़ा कष्टप्रद जीवन बिताना पड़ा। न जाने क्यों फांसी की सज़ा को क्रियान्वित करने में अंग्रेज अधिकारी बंदियों के साथ ऐसा अमानुषिक बर्ताव कर रहे थे। फांसी से पहल की रात ठाकुर रोशन सिंह कुछ घंटे सोए। फिर देर रात से ही ईश्वर भजन करते रहे। प्रातःकाल शौच आदि से निवृत्त होकर यथानियम स्नान-ध्यान किया। कुछ देर गीता पाठ में लगाया, फिर पहरेदार से कहा-चलो। वह हैरत से देखने लगा कि यह कोई आदमी है या देवता। उन्होंने अपनी काल कोठरी को प्रणाम किया और गीता हाथ में लेकर निर्विकार भाव से फांसी घर की ओर चल दिए। फांसी के फंदे को चूमा, फिर जोर से तीन बार 'वंदे मातरम्' का उद्घोष किया। 'वेदमंत्र) का जाप करते हुए वे 19 दिसम्बर 1927 को फंदे से झूल गए। उस समय वे इतने निर्विकार थे, जैसे कोई योगी सहज भाव से अपनी साधना कर रहा हो।

रामप्रसाद बिस्मिल, अशफाक उल्ला के साथ ठाकुर रोशन सिंह को 19 दिसम्बर 1927 को इलाहाबाद की नैनी जेल में फांसी दी गई।

■■■

स्वामी श्रद्धानन्द सरस्वती 22 फरवरी 1856-23 दिसम्बर 1926

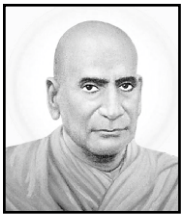

स्वामी श्रद्धानन्द सरस्वती भारत के शिक्षाविद, स्वतंत्रता संग्राम सेनानी तथा आर्यसमाज के संन्यासी थे जिन्होंने स्वामी दयानन्द सरस्वती की शिक्षाओं का प्रसार किया। वे भारत के उन महान राष्ट्रभक्त संन्यासियों में अग्रणी थे, जिन्होंने अपना जीवन स्वाधीनता, स्वराज्य, शिक्षा तथा वैदिक धर्म के प्रचार-प्रसार के लिए समर्पित कर दिया था।

स्वामी श्रद्धानन्द का जन्म 22 फरवरी सन् 1856 (फाल्गुन कृष्ण त्रयोदशी, विक्रम संवत् 1913) को पंजाब प्रान्त के जालन्धर जिले के तलवान ग्राम में एक कायस्थ परिवार में हुआ था। उनके पिता, लाला नानक चन्द, ईस्ट ईण्डिया कम्पनी द्वारा शासित यूनाइटेड प्रोविन्स (वर्तमान उत्तर प्रदेश) में पुलिस अधिकारी थे। उनके बचपन का नाम वृहस्पति और मुंशीराम था, किन्तु मुन्शीराम सरल होने के कारण अधिक प्रचलित हुआ।

पिता का ट्रान्सफर अलग-अलग स्थानों पर होने के कारण उनकी आरम्भिक शिक्षा अच्छी प्रकार नहीं हो सकी। लाहौर और जालंधर उनके मुख्य कार्यस्थल रहे। एक बार आर्य समाज के संस्थापक स्वामी दयानन्द सरस्वती वैदिक -धर्म के प्रचारार्थ बरेली पहुंचे। पुलिस अधिकारी नानकचन्द अपने पुत्र मुंशीराम को साथ लेकर स्वामी दयानन्द का प्रवचन सुनने पहुंचे। युवावस्था तक मुंशीराम ईश्वर के अस्तित्व में विश्वास नहीं करते थे। आदित्यमूर्ति दयानन्द के महान व्यक्तित्व के दर्शन कर तथा सभा में पादरी स्काट एवं अन्य यूरोपियनो को बैठा देखकर इनके मन में श्रद्धा का उत्साह प्रसफुटित हो उठा। इन्होंने तीन अवसरों पर स्वामी जी के समक्ष ईश्वर के अस्तित्व पर शंका प्रकट की। स्वामी दयानन्द जी के तर्को और आशीर्वाद ने मुंशीराम को दृढ़ ईश्वर विश्वासी तथा वैदिक धर्म का अनन्य भक्त बना दिया।

वे एक सफल वकील बने तथा काफी नाम और प्रसिद्धि प्राप्त की। आर्य समाज में वे बहुत ही सक्रिय रहते थे।

उनका राजनैतिक जीवन रोलेट एक्ट का विरोध करते हुए एक स्वतन्त्रता सेनानी के रूप में प्रारम्भ हुआ। अच्छी-खासी वकालत की कमाई छोड़कर स्वामीजी ने ''दैनिक विजय'' नामक समाचार-पत्र में ''छाती पर पिस्तौल'' नामक क्रान्तिकारी लेख लिखे। स्वामीजी महात्मा गांधी के सत्याग्रह से प्रभावित थे। जालियावाला बाग हत्याकाण्ड तथा रोलेट एक्ट का विरोध वे हिंसा से करने में कोई बुराई नहीं समझते थे।

स्वामी जी ने 13 अप्रैल 1917 को संन्यास ग्रहण किया, तो वे स्वामी श्रद्धानन्द बन गये। आर्यसमाज के सिद्धान्तों का समर्थक होने के कारण उन्होंने इसका बड़ी तेजी से प्रचार-प्रसार किया। वे नरम दल के समर्थक होते हुए भी ब्रिटिश उदारता के समर्थक नहीं थे। आर्यसमाजी होने के कारण उन्होंने हरिद्वार में गंगा किनारे गुरूकुल कांगड़ी की स्थापना कर वैदिक शिक्षा प्रणाली को महत्व दिया।

स्वामी श्रद्धानन्द ने दलितों की भलाई के कार्य को निडर होकर आगे बढ़ाया, साथ ही कांग्रेस के स्वाधीनता आंदोलन का बढ़ चढ़ कर नेतृत्व भी किया। कांग्रेस में उन्होंने 1919 से लेकर 1922 तक सक्रिय रूप से महत्त्वपूर्ण भागीदारी की।

श्रद्धानन्द जी सत्य के पालन पर बहुत जोर देते थे। उन्होंने लिखा है-

''प्यारे भाइयो! आओ, दोनों समय नित्य प्रति संध्या करते हुए ईश्वर से प्रार्थना करें और उसकी सत्ता से इस योग्य बनने का यत्न करें कि हमारे मन, वाणी और कर्म सब सत्य ही हों। सर्वदा सत्य का चिंतन करें। वाणी द्वारा सत्य को प्रकाशित करें और कर्म में भी सत्य का ही पालन करें। लेकिन सत्य और कर्म के मार्ग पर चलने वाले इस महात्मा की एक व्यक्ति ने 23 दिसम्बर 1926 को चांदनी चौक, दिल्ली में गोली मारकर हत्या कर दी। इस तरह धर्म, देश, संस्कृति शिक्षा और दलितों को उत्थान करने वाला यह युगधर्मी महापुरूष सदा के लिए अमर हो गया।

■■■

लाला लाजपत राय जन्म: 28 जनवरी 1865 बलिदान: 17 नवम्बर 1928

28 जनवरी, 1865 को लाला लाजपतराय का जन्म पंजाब के मोगा जिलें में हुआ था। उनके पिता लाला राधाकृष्ण अग्रवाल पेशे से अध्यापक और उर्दू के प्रसिद्ध लेखक थे। प्रारम्भ से ही लाजपत राय लेखन और भाषण में बहुत रूचि लेते थे। उन्होंने हिसार और लाहौर में वकालत शुरू की। लाला लाजपतराय को शेर-ए-पंजाब का सम्मानित संबोधन देकर लोग उन्हें गरम दल का नेता मानते थे। लाला लाजपतराय स्वावलंबन से स्वराज्य लाना चाहते थे।

1905 में बंगाल का विभाजन किया गया तो लाला लाजपतराय ने सुरेन्द्रनाथ बनर्जी और विपिनचंद्र पाल जैसे आंदोलनकारियों से हाथ मिला लिया और अंग्रेजों के इस फैसले की जमकर बगावत की। देशभर में उन्होंने स्वदेशी आंदोलन को चलाने और आगे बढ़ाने में अहम भूमिका निभाई।

लाला जी की लोकप्रियता से अंग्रेज भी डरने लगे। सन् 1914 -20 तक लाल लाजपत राय को भारत आने की इजाजत नहीं दी गई। प्रथम विश्वयुद्ध में भारत से सैनिकों की भर्ती के वे विरोधी थे। अंग्रजों के जीतने पर उन्होंने यह अपेक्षा नहीं की वे गांधी जी की भारत स्वतंत्र करने की मांग स्वीकार कर लेंगे। अंग्रेज सरकार जानती थी कि लाल बाल (बाल गंगाधर तिलक) और पाल (विपिन चन्द्र पाल) इतने प्रभावशाली व्यक्ति हैं कि जनता उनका अनुसरण करती हैं। अंग्रेजों ने अपने को सुरक्षित रखने के लिए जब लाला को भारत नहीं आने दिया तो वे अमेरिका चले गए। वहां 'यंग इंडिया' पत्रिका का उन्होंने संपादन-प्रकाशन किया। न्यूयार्क में इंडियन इनफार्मेशन ब्यूरो की स्थापना की इसके अतिरिक्त दूसरी संस्था इंडिया होमरूल भी स्थापित की।

साल 1920 में जब वह भारत आए तब उनकी लोकप्रियता आसमान पर जा चुकी थी। इसी साल कलकत्ता में कांग्रेस के एक विशेष सत्र में वह गांधी जी के संपर्क में आए और असहयोग आंदोलन का हिस्सा बन गए। लाला लाजपतराय के नेतृत्व में असहयोग आंदोलन पंजाब में जंगल में आग की तरह फैल गया और जल्द ही वे पंजाब का शेर, पंजाब केसरी जैसे नामों से पुकारे जाने लगे। लालाजी ने अपना सर्वोच्च बलिदान साइमन कमीशन के समय दिया।

30 अक्टूबर, 1928 को इंग्लैड के प्रसिद्ध वकील सर जॉन साइमन की अध्यक्षता में एक सात सदस्यीय आयोग लाहौर आया। साइमन कमीशन का विरोध करते हुए उन्होंने 'अंग्रेजों वापस जाओ' का नारा दिया तथा कमीशन का डटकर विरोध जताया। इसके जवाब में अंग्रेजों ने उन पर लाठी चार्ज किया। अपने अंतिम भाषण में उन्होंने कहा, मेरे शरीर पर पड़ी एक-एक चोट ब्रिटिश साम्राज्य के कफन की कील बनेगी' और इस चोट ने कितने ही ऊधम सिंह और भगत सिंह तैयार कर दिए, जिनके प्रयत्नों से हमें आजादी मिली। पुलिस की लाठियों और चोट की वजह से 17 नवम्बर, 1928 को उनका देहान्त हो गया।

■■■

महात्मा हंस राज जन्म: 19 अप्रैल 1864 स्मृति 15 नवंबर 1936

महात्मा हंस राज जी का जन्म 19 अप्रैल 1864 को पंजाब के होशियारपुर जिले के एक छोटे गांव बजवाड़ा के साधारण परिवार में हुआ। माता का नाम श्रीमती गणेश देवी था। 12 वर्ष की आयु में उनके पिता चुन्नीलाल जी के निधन के पश्चात उनका लालन-पालन बड़े भाई मुल्कराज ने किया। विलक्षण प्रतिभा के धनी लाला हंसराज जी की आरंभिक शिक्षा गांव बजवाड़ा के स्थानीय विद्यालय में हुई थी। तत्पश्चात राजकीय कॉलेज ''लाहौर' से उन्होंने बैचलर ऑफ आर्ट्स की परीक्षा अच्छे अंकों से पास की थी।

वर्ष 1885 ई. में जब वे अपने बड़े भाई मुल्कराज के यहां रहकर शिक्षा ग्रहण कर रहे थे, तब उन्हीं दिनों लाहौर में स्वामी दयानन्द सरस्वती जी से जुड़ी सत्संग में भाग लेने का मौका मिला। उस सत्संग के दौरान लाल हंसराज जी के जीवन पर स्वामी दयानंद जी के विचारों का गहरा प्रभाव पड़ा। तत्पश्चात युवा लाला हंसराज जी ने अपना जीवन सदा के लिए समाज सेवा में सपर्पित करने का फैसला किया। हंसराज जी आवश्यक कार्यों से बचा सारा समय मोहल्ले के गरीब तथा अनपढ़ लोगों की चिट्ठी पत्री पढ़ने और लिखने में ही लगा देते थे।

स्वामी दयानन्द की स्मृति में एक शिक्षण संस्था की स्थापना का विचार बहुत समय से चल रहा था। परंतु धन का अभाव इनके रास्ते में आ रहा था। उनके बड़े भाई लाला मुल्कराज स्वयं भी आर्य समाज के विचारों वाले व्यक्ति थे। उन्होंने हंसराज के सामने प्रस्ताव रखा कि वे इस शिक्षा संस्था का अवैतनिक प्रधानाध्यापक बनना स्वीकार कर लें। उनके भरणपोषण के लिए वे हंसराज को अपना आधा वेतन अर्थात तीस रुपये प्रतिमास देते रहेगें। व्यक्तिगत सुख के ऊपर समाज की सेवा को प्रधानता देने वाले हंसराज ने सहर्ष ही इसे स्वीकार कर लिया। इस प्रकार 1 जून 1886 को महात्मा हंस राज 'दयानन्द एंग्लोवैदिक हाई स्कूल' लाहौर के अवैतनिक प्रधानाध्यापक बन गए। इस समय उनकी आयु 22 वर्ष थी। देश धर्म और आर्य समाज की सेवा करते हुए 15 नवम्बर 1936 को महात्मा हंस राज जी ने अंतिम सांस ली।।

■■■

खुदी राम बोस जन्म 3 दिसंबर 1889 बलिदान 11 अगस्त 1908

खुदीराम बोस भारतीय स्वतंत्रता सेनानी थे, जो स्वतंत्रता आंदोलन के सबसे कम उम्र के क्रांतिकारी थे। खुदीराम बोस का जन्म 3 दिसम्बर 1889 को हुआ था। खुदीराम बोस के पिता त्रिलोकनाथ बसु शहर में एक तहसीलदार थे और माँ लक्ष्मीप्रिया देवी एक धार्मिक महिला थीं। खुदीराम बोस का जन्म स्थान मिदनापुर जिले के बहुवैनी, पश्चिम बंगाल में हुआ था।

खुदीराम बोस भगवद् गीता में कर्म की धारणा से प्रभावित थे। भारत माता को ब्रिटिश शासन के चंगुल से आजाद करने के लिए क्रांतिकारी गतिविधियों में शामिल हो गए थे। 1905 में, बंगाल के विभाजन ब्रिटिश राजनीति से असंतुष्ट खुदीराम बोस क्रांतिकारी कार्यकर्ताओं के साथ जुगंत पार्टी में शामिल हो गए। सोलह वर्ष की उम्र में खुदीराम बोस ने पुलिस स्टेशनों के पास बम छोड़े और सरकारी अधिकारी को अपना निशाना बनाया। इन बम धमाकों के आरोप में खुदीराम बोस को गिरफ्तार कर लिया गया।

30 अप्रैल 1908 में, खुदीराम बोस और प्रफुल्ल चाकी ने बिहार के मुजफ्फरपुर जिले के मुख्य प्रेसीडेंसी मजिस्ट्रेट किंग्सफोर्ड पर हमला करने की योजना बनाई। यह मजिस्ट्रेट स्वतंत्रता सेनानियों के खिलाफ अपने कठोर फैसले के लिए जाने जाते थे। ये दोनों यूरोपीय क्लब के गेट से किंग्सफोर्ड की बग्गी आने का इंतजार कर रहे थे और खुदीराम बोस को किंग्सफोर्ड जैसी बग्गी सामने से आती हुई दिखाई दी, इन्होंने इस पर बम फेंक दिया। इस दुर्भाग्यपूर्ण घटना के परिणाम स्वरूप दो निर्दोष ब्रिटिश महिलाएं-श्रीमती केनेडी और उनकी बेटी मारी गई। दोनों क्रांतिकारी अपराध स्थल से भाग निकले। बाद में, प्रफुल्ल ने स्वयं को गोली मारकर आत्महत्या कर ली और खुदीराम बोस को पुलिस ने गिरफ्तार कर लिया।

खुदीराम बोस द्वारा फेंके गए बम हमले के आरोप में, उन्हें 19 की उम्र में मौत की सजा सुनाई गई। खुदीराम बोस को 11 अगस्त 1908 को फांसी पर लटका दिया गया था।

अमर शहीद उधम सिंहः जन्म 26 दिसंबर 1899: स्मृति 31 जुलाई 1940

उधम सिंह जी का जन्म 26 दिसम्बर 1899 में पंजाब के संगरूर जिले के सुनाम में हुआ था, और उनको उस समय लोग शेर सिंह के नाम से जाना करते थे। बालयकाल में ही माता पिता की मृत्यु के कारण उनका बचपन खालसा अनाथालय में बीता जहां रहकर उन्होंने मैट्रिक की परीक्षा पास की। शहीद भगत सिंह द्वारा किए गए अपने देश के प्रति क्रांतिकारी कार्य और उनके समूहों से उधम सिंह बहुत ही प्रभावित हुए थे। 1935 में जब उधम सिंह जी को शहीद भगत सिंह जी का सहयोगी मान लिया गया और इसके साथ ही शहीद भगत सिंह का शिष्य उधम सिंह को भी मान लिया गया था। उधम सिंह जी के देश भक्ति गीत बहुत ही पंसद थे, वह उनको हमेशा सुना करते थे। उस समय के महान क्रांन्तिकारी कवि राम प्रसाद बिस्मिल जी के द्वारा लिखे गए गीतों को सुनने के वे बहुत शौकीन थे। जलियांवाला बाग की दुखद घटना का बदला लेने के लिए उधम सिंह ने प्रण लिया कि जिसके इशारों पर यह नरसंहार हुआ था उसको सजा देकर ही रहेंगे। उधम सिंह ने अपने द्वारा लिए गए संकल्प को पूरा करने के मकसद से उन्होंने अपने नाम को अलग-अलग जगहों पर बदला और वे दक्षिण अफ्रीका, जिंबाब्वे, ब्राजील, अमेरिका, नैरोबी जैसे बड़े देशों में अपनी यात्राएं की।

1934 में उधम सिंह लंदन पहुंच गए और वहां पर उन्होंने अपने कार्य को अंजाब देने के लिए सही समय का इंतजार करना शुरू कर दिया। भारत का यही वीर पुरूष जलियांवाले बाग के21 साल बाद 13 मार्च 1940 को रायल सेंट्रल एशियन सोसायटी की लंदन के ''कास्अन हाल'' में जहां बैठक थी, माइकल ओ डायर को उसके किए का दंड देने के लिए तैयार बैठा था। जैसे ही वह बैठक का वक्त समीप आया वैसे ही उधम सिंह ने आगे बढ़कर जनरल डायर को मारने के लिए दो शॉर्ट दाग दिए, जिससे जनरल डायर की घटनास्थल पर ही मृत्यु हो गई। जनरल डायर के मृत्यु का दोषी 4 जून 1940 को धम सिंह को घोषित कर दिया गया। 31 जुलाई 1940 को लंदन के ''पेंटोनविले जेल'' में उनको फांसी की सजा दी गई। इस तरह उन्होंने अपने देशवासियों के लिए मात्र 40 वर्ष की आयु में अपने आप को समपर्ण कर दिया।

■■■

राजेन्द्रनाथ लाहिड़ी 29 जून 1901-17 दिसम्बर 1927

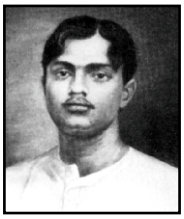

बंगाल (आज का बांग्लादेश) में पबना जिले के अन्तर्गत मड़यां (मोहनपुर) गांव में 29 जून 1901 के दिन क्षिति मोहन लाहिड़ी के घर राजेन्द्रनाथ लाहिड़ी का जन्म हुआ। उनकी माता का नाम बसन्त कुमारी था। उनके जन्म के समय पिता क्रान्तिकारी क्षिति मोहन लाहिड़ी व बड़े भाई बंगाल में चल रही अनुशीलन दल की गुप्त गतिविधियों में योगदान देने के आरोप में कारावास की सलाखों के पीछे कैद थे। दिल में राष्ट्र-प्रेम की चिन्गारी लेकर मात्र नौ वर्ष की आयु में ही बंगाल से अपने मामा के घर वाराणसी पहुंचे। वाराणसी में ही उनकी शिक्षा दीक्षा सम्पन्न हुई। काकोरी काण्ड के दौरान लाहिड़ी काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में इतिहास विष्य में एम०ए० (प्रथम वर्ष) के छात्र थे। 17 दिसम्बर 1927 को गोण्डा के जिला कारागार में अपने साथियों से दो दिन पहले उन्हें फोसी दे दी गयी। राजेन्द्ररनाथ लाहिड़ी को देश-प्रेम और निर्भीकता की भावना विरासत में मिली थी। राजेन्द्रनाथ काशी की धार्मिक नगरी में पढ़ाई करने गये थे किन्तु संयोगवश वहां पहले से ही निवास कर रहे सुप्रसिद्ध क्रान्तिकारी शचींद्रनाथ सान्याल के सम्पर्क में आ गये। राजेन्द्र की फौलादी दृढ़ता, देश-प्रेम और आजादी के प्रति दीवानगी के गुणों को पहचान कर शचीन दा ने उन्हें अपने साथ रखकर बनारस से निकलने वाली पत्रिका बंग वाणी के सम्पादक का दायित्व तो दिया ही, अनुशीलन समिति की वाराणसी शाखा के सशस्त्र विभाग का प्रभार भी सौंप दिया। उनकी कार्य कुशलता को देखते हुए उन्हें हिन्दुस्तान रिपब्लिकन ऐसोसिएशन की गुप्त बैठकों में आमन्त्रित भी किया जाने लगा।

उस समय क्रान्तिकारियों के चल रहे आन्दोलन को गति देने के लिए तत्काल धन की आवश्यकता थी। इसके लिए अंग्रेजी सरकार का खजाना लूटने की योजना बनाई। योजना के अनुसार 9 अगस्त, 1925 को सायंकाल छह बजे लखनऊ के पास काकोरी से छूटी आठ डाउन गाड़ी में जा रहे सरकारी खजाने को लूट लिया गया। काम पूरा कर कर सब तितर-बितर हो गये।

इसमें रामप्रसाद बिस्मिल, अशफाक उल्लाह खान, ठाकुर रोशन सिंह सहित 19 अन्य क्रान्तिकारियों ने भाग लिया था। पकड़े गये सभी क्रांतिवीरों पर शासन के विरूद्ध सशस्त्र युद्ध छेड़ने एवं खजाना लूटने का अभियोग लगाया गया।

इस कांड में लखनऊ की विशेष अदालत ने छह अप्रैल 1927 को निर्णय सुनाया, जिसके अन्तर्गत राजेन्द्र लाहिड़ी, रामप्रसाद बिस्मिल, रोशन सिंह तथा अशफाक उल्लाह खान को मृत्यु दंड दिया गया। शेष तीनों के 19 दिसम्बर को फांसी दी गयी। लेकिन भयवश अंग्रेजी शासन ने राजेन्द्र लाहिड़ी को गोंडा कारागार में 17 दिसम्बर 1927 को ही फांसी दे दी।

■■■

राम प्रसाद बिस्मिल 11 जून 1897 - 19 दिसम्बर 1927

राम प्रसाद बिस्मिल भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन की क्रान्तिकारी धारा के एक प्रमुख सेनानी थे, जिन्हें 30 वर्ष की आयु में ब्रिटिश सरकार ने फांसी दे दी। वे मैनपुरी षडयन्त्र व काकोरी-काण्ड जैसी कई घटनाओं में शामिल थे तथा हिन्दुस्तान रिपब्लिकन ऐसोसिएशन के सदस्य भी थे।

राम प्रसाद एक कवि, शायर, अनुवाद, बहुभाषाभाषी, इतिहासकार व साहित्यकार भी थे। बिस्मिल उनका उर्दू तखल्लुस (उपनाम) था जिसका हिन्दी में अर्थ होता है आत्मिक रूप से आहत। बिस्मिल के अतिरिक्त वे राम और अज्ञात के नाम से भी लेख व कवितायें लिखते थे।

11 जून 1897 शुक्रवार को उत्तर प्रदेश के शाहजहांपुर में जन्मे राम प्रसाद 30 वर्ष की आयु में 19 दिसम्बर 1927 को शहीद हुए। उन्होंने सन् 1916 में 19 वर्ष की आयु में क्रान्तिकारी मार्ग में कदम रखा था। 11 वर्ष के क्रान्तिकारी जीवन में उन्होंने कई पुस्तकें लिखीं और स्वयं ही उन्हें प्रकाशित किया। उन पुस्तकों को बेचकर जो पैसा मिला उससे उन्होंने हथियार खरीदे और उन हथियारों का उपयोग ब्रिटिश राज का विरोध करने के लिए किया। 11 पुस्तकें उनके जीवन काल में प्रकाशित हुई, जिनमें से अधिकतर सरकार द्वारा ज़ब्त कर ली गयी।

बिस्मिल को तत्कालीन संयुक्त प्रान्त आगरा व अवध की लखनऊ सेण्ट्रल जेल की 11 नम्बर बैरक में रखा गया था। इसी जेल में उनके दल के अन्य साथियों को एक साथ रखकर उन सभी पर ब्रिटिश राज के विरूद्ध साजिश रचने का ऐतिहासिक मुकदमा चलाया गया था।

■■■

व्यक्ति और समाज व्याहृतियों की छाया में-

स्व. स्वामी आत्मानन्द जी महाराज

संसार में कोई प्राणी ऐसा न मिलेगा, जो अपने अस्तित्व की रक्षा न करना चाहता हो। "मैं मिट जाऊँ" इस भाव का प्रकाश कोई प्राणी करना नहीं चाहता। इसके विपरीत यदि कोई उसके विनाश का यत्न करे तो वह अपनी रक्षा के लिए जो कुछ उससे बने पूरा प्रयत्न करता है। वह अस्तित्व दो प्रकार का है "वैयक्तिक" और "सामाजिक"। इन दोनों का परस्पर गहरा सम्बन्ध है, यदि व्यक्ति विकृत या नष्ट हो जाए, तो समाज का अंग-भंग हो जाता है और समाज का अस्तित्व न रहे, तो व्यक्ति के अस्तित्व का कोई प्रश्न ही नहीं रहता।

हमारे धार्मिक साहित्य में व्याहृतियों, ओम् भूः, ओम् भुवः, ओम् स्वः, ओम् महः, ओम् जनः, ओम् तपः, सत्यम् ये सात हैं। मनुष्य के व्यक्तित्व निर्माण का रहस्य तथा उसकी सामाजिक शक्तियों के विकास का तत्व इन्हीं सात व्याहृतियों में गागर में सागर की भाँति भरा हुआ है। इनमें से पहली तीन व्याहृतियों को महाव्याहृति कहा जाता है और शेष को केवल व्याहृति कहते हैं। इन व्याहृतियों के द्वारा मनुष्य के अस्तित्व का निर्माण तथा उसकी रक्षा किस प्रकार होती है। यह इस लेख का प्रतिपाद्य विषय है।

व्याहृति- व्याहृति नाम ऐसे व्यक्तव्य का है जिसमें अनेक रहस्यों का संग्रह थोड़े शब्दों में किया गया है। जिस संक्षिप्त से वाक्य में गुप्त और अत्यन्त महत्वपूर्ण उपदेश भरा हो उसे व्याहृति कहते हैं। आगे व्याहृतियों के अर्थो का उल्लेख किया जाएगा।

'ओम् भूः'- यह पहली व्याहृति है। 'भूः' इसकी उत्पत्ति 'भू' धातु से हुई है। भू धातु के प्राप्ति आदि और भी कई अर्थ हैं, परन्तु सत्ता इन सबमें मुख्य है। यों कह सकते हैं कि सत्ता में ही शेष सब अर्थ समाये हुए हैं। सत्ता का अर्थ है 'अस्तित्व'। इसलिए यह शब्द संदेश देता है कि मनुष्य का सबसे पहला कर्त्तव्य अपने अस्तित्व की रक्षा करना है। मनुष्य के अस्तित्व को स्थिर रखने के लिए उसे जिन साधनों, जिस सामग्री अथवा जिस कार्यक्रम की आवश्यकता है उन सबकी रक्षा करनी भी अस्तित्व की रक्षा के लिए आवश्यक हो जाता है।

हम पहले लिख आए हैं कि अस्तित्व दो प्रकार के हैं। एक व्यक्तिगत और दूसरा सामुदायिक। ये दो प्रकार के जीवन ही मनुष्य का कार्यक्षेत्र हैं। मनुष्य में जितना आकर्षण अपने व्यक्तित्व के लिए है उतना ही समाज के लिए भी है तब तो ठीक है, अन्यथा उसकी जीवन का एक अंश अधूरा है। संघ के बिना मनुष्य असहाय है। यद्यपि कई लोक स्वेच्छा से अरण्यवास पसन्द करते हैं तथापि उनका अन्तिम उद्देश्य सामुदायिक हित के लिए अपने आपको शक्तिशाली बनाना ही होता है। साधु-सन्त जंगल में रहते हैं, आत्म साक्षात्कार करते हैं, परन्तु अन्त में ऋषि दयानन्द जैसे सम्पन्न महापुरुष अपने उस संचित शक्ति का प्रयोग जनता की अर्थात् समुदाय की सर्वाङ्गीण उन्नति के लिए ही करते हैं, इस प्रकार व्यक्तिगत, जातीय तथा राष्ट्रीय अस्तित्व की रक्षा करने का संकेत इस पहली व्याहृति से मिलता है। आज मानव अपने सामाजिक अस्तित्व को भुला बैठा है, यही कारण है कि समाज का सहयोग न होने से वह अपने व्यक्तिगत अस्तित्व का भी पूर्ण विकास नहीं कर पाता जितना खिन्न हम अपने व्यक्तिगत स्वार्थ की हानि से होते हैं, उतने अपने सामाजिक बन्धन के स्वार्थ की हानि से नहीं होते और यही दशा हमारी हानि के समय हमारे

सामाजिक बन्धु की होती है, इस प्रकार परस्पर सहयोग न होने से हम दोनों ही अपने व्यक्तिगत स्वार्थों से वंचित रह जाते हैं। ऐसे अवसरों पर गम्भीर दृष्टिपात कर हमें निर्णय करना चाहिए कि हमारा सामाजिक जीवन हमारे लिए कितना अमर ज्योति का संचारक है। यह सामाजिक जीवन ही तो है जो विद्वेष का विध्वंस कर प्रेम को गद्दी पर बैठाता है, फूल का सिर फोड़ संयोग का समाधान करता है और मैं का मान मर्दन कर हम के भव्य भाव को अन्तःकरण में जागृत करता है। 'भू' धातु का दूसरा अर्थ है प्राप्ति। अपने अस्तित्व की रक्षा के लिए मनुष्य कुछ न कुछ प्राप्त करना चाहता है, "भूमि, भवन, भोजन, भगवान, यश, धन, बल, सुख, ओज, महान्।"

प्रायः ये ही उसकी प्राप्ति की वस्तुएँ हैं। इनके प्राप्त कर लेने पर उसके अस्तित्व का पूर्ण निर्माण होता है। इनमें से प्रत्येक वस्तु की प्राप्ति के लिए कितने ही मनुष्य पशु आदि सहयोगियों की आवश्यकता पड़ती है और बिना सामाजिक जीवन को सुन्दर बनाए उचित रूप में यह संयोग सम्भव नहीं। यजुर्वेद के चालीसवें अध्याय में स्पष्ट कहा है, "सब की आत्माओं को अपनी आत्मा में और अपनी आत्मा को सबकी आत्माओं में समझो, सामाजिक भावना को और भी सुन्दर बनाने के लिए आगे चलकर दूसरे मन्त्र में कहा, "सबकी आत्माओं को अपनी आत्मा और अपनी आत्मा को सबकी आत्मा समझो।" तात्पर्य यह ही है कि अपनी तरह सब ही को सुखी बनाने का यत्न करो। कैसा सुन्दर मार्ग है- हम के बिना मैं का और मैं के बिना हम का सुन्दर निर्माण असम्भव है। बस यह व्याहृति हमें अपने अस्तित्व की रक्षा के लिए व्यक्ति और समाज दोनों का साथ-साथ ही निर्माण सिखाती है।

'ओम् भुवः'- 'भुवः' यह शब्द भी 'भू' धातु से ही बना है। इसलिए इसकी भी सत्ता और प्राप्ति दोनों अर्थ हैं। इन दोनों के अर्थ में थोड़ा-सा अन्तर भी है। भू का अर्थ है अस्तित्व का निर्माण करना और भुवः का अर्थ है निर्माण की भावना करना। भूः व्याहृति के कार्यक्रम में शरीर और इन्द्रिय का प्रयोग है और भुवः के कार्यक्षेत्र में हृदय का प्रयोग है। भू का सम्बन्ध पृथ्वी से है तो भुवः का अंतरिक्ष में वर्तमान शक्तियों से। तात्पर्य यह है कि भूः का कार्यक्षेत्र हमारे स्थूल शरीर का निर्माण करता है और भुवः के कार्यक्षेत्र में सूक्ष्म शरीर को उन्नत बनाया जाता है। स्थूल शरीर तथा स्थूल इन्द्रियों की चाहे कितनी भी उन्नति कर ली जाए, परन्तु सूक्ष्म शरीर के प्रधान तत्व अन्तःकरण का उत्थान हुए बिना व्यक्ति और समाज दोनों एक साथ उन्नति करनी कठिन होगी। यह ठीक है कि स्थूल शरीर के द्वारा हम अनेक पदार्थों का निर्माण और उसकी प्राप्ति कर सकेंगे; परन्तु अन्तःकरण में उदार भावनाओं का विकास किए बिना उन प्राप्त की हुई वस्तुओं को समाज का समझना हमारे लिए कठिन होगा। आज के युग में भूः का आश्रय लिया जा रहा है भुवः का नहीं; यही कारण है कि आज प्राणी-जगत दुःख के साँस ले रहा है। भुवः का अर्थ दुःखों को दूर करना इसलिए कहा जाता है, कि भुवः का आश्रय लेने पर ही हम प्राणी मात्र के कल्याण की भावना कर, स्वयं भी सुखी हो सकते हैं और दूसरों को भी सुखी बना सकते हैं।

'ओम् स्वः'-"स्वर" यह तीसरी व्याहृत है। 'स्वर' का अर्थ आनन्द भी है। "स्वर ज्योतिरगामहम्" (मैं स्वर नामक ज्योति के पास पहुँच गया), इस मन्त्र भाग के अनुसार स्वर का ज्योति अर्थ भी है और "सुग्वर्गेयाय शक्तया" (शक्ति से उत्तम वर्ग में जाने के लिए) इस मन्त्र भाव के अनुसार इस स्थान को उत्तम वर्ग में रहने का स्थान भी माना गया है। आनन्द शब्द उपनिषदों में ब्रह्म के अर्थों में आता है, सबसे महान् ज्योति भी ब्रह्म ही है। इस दो अर्थों को जानकर यह बिना कठिनाई के

ही समझ में आ जाता है कि उस उत्तम वर्ग का निवास स्थान भी ब्रह्म ही है। ब्रह्म में मुक्त आत्माओं का प्रवेश ही सम्भव है; इसलिए यहाँ उत्तम वर्ग का अर्थ होगा मुक्त आत्माओं का झुण्ड।

स्वर शब्द का अर्थ जानने के बाद पाठक समझ गए होंगे कि हमारे पहली दो व्याहृतियों के द्वारा प्रकट किए गए, स्थूल और सूक्ष्म दोनों ही क्षेत्रों के कार्यक्रम का अन्तिम लक्ष्य स्वर्ज्योति की प्राप्ति है। अर्थात् ब्रह्म रूपी परमज्योति के अन्दर प्रवेश है। इस कार्यक्रम को अपनाने के बाद ही हमारा अस्तित्व पूरा होता है और हमें वह वस्तु मिल जाती है जिसकी प्राप्ति के बाद और कुछ प्राप्त करने योग्य नहीं रह जाता।

हम पहले लिख आए हैं कि इन तीनों व्याहृतियों को महाव्याहृति कहते हैं। संक्षेप में इनका भाव जान लेने के बाद पाठक यह समझ गए होंगे कि ये तीनों व्याहृतियाँ मनुष्य जीवन के पूर्ण लक्ष्य पर पूरा प्रकाश डालती हैं। इसलिए इनका यह नाम सार्थक है। इन तीनों महाव्याहृतियों द्वारा प्रकट किए परम लक्ष्य की प्राप्ति के लिए ही शेष चार व्याहृतियों के आदेश का अनुसरण आवश्यक है, यह भाव आगे की चार व्याहृतियों में स्पष्ट किया जाएगा।

'ओम् महः'- इस व्याहृति का अर्थ है महत्व-बड़प्पन। संसार के कार्यक्षेत्र में आकर खड़ा होते ही मनुष्य को समझ लेना चाहिए कि मैं महान् हूँ। जब मनुष्य ऐसा समझकर कार्यक्षेत्र में आकर खड़ा होगा तो उसके लिए यह सम्भव है कि किसी समय वह अपने महत्व पर आए हुए आवरण को उतार कर फेंक सकेगा और अपने वास्तविक स्वरूप महत्व को प्राप्त कर सकेगा। परन्तु जिसने अपने आपको पहले ही हीन समझ लिया है उसका अपने आप तो महत्व की ओर अग्रसर होना कठिन दूर की बात है, दूसरे के सहारे से भी आगे बढ़ना असम्भव हो जाता है। न उसका व्यक्तित्व उत्थान होता है और न वह समाज का अंग ही बनने योग्य होता है। भारत के दलित वर्ग की ओर भारत के ही नहीं सारे संसार के ही दलित वर्ग की चिरकाल से ऐसी ही अवस्था देखने में आ रही है। भारत के उन्नत वर्ग ने उन्हें समय-समय पर, महाशय, हरिजनादि जिन-जिन उत्तम शब्दों से सम्बोधित किया अपने महत्व की ओर ध्यान न देने के कारण वे शब्द उनके काल्पनिकहीन स्वरूप के साथ जुड़ने के कारण हीन ही होते चले गए।

आत्मा और आत्मा में परस्पर भेद क्या है। मानव शरीर और मानव शरीर एक जैसे ही तो हैं। भेद केवल इतना ही है कि एक ने अपने महत्व को समझकर उसे माँज-धोकर निखार लिया है, और दूसरा खान में पड़े हुए मिट्टी से लथपथ हीरे की तरह अपने आपको हीन ही समझता आ रहा है। दलित वर्ग की इस भावना को अपनाने में इस वर्ग का ही हाथ नहीं है समाज का भी इसके पतन में गहरा भाग है। स्वार्थी समाज ने अपने दास ही बनाए रखने के लिए अथवा किसी और कारण से, इनके महत्व को मलिनता के आवरण से बाहर निकलने ही नहीं दिया। अपने इस कर्म के फल को भी समाज ने कम नहीं भोगा। भारत के पहले के और अबके सब के सब अंग-भंग समाज की इसी हीन नीति के परिणाम हैं। परन्तु अब भी समाज उसी मार्ग पर चल रहा है।

समय-समय पर ऋषि दयानन्द और महात्मा गाँधी जैसे महापुरुष आए और चले गए, परन्तु फिर भी समाज के कान पर जूँ नहीं रेंगी। समाज कह सकता है कि हमने उन्हें आर्य नाम दिया, महाशय नाम दिया और हरिजन नाम दिया। ठीक है दिया, परन्तु आप किसी निर्धन का नाम करोड़पति रखते रहें उससे उसे क्या लाभ। यह शब्द तो उल्टा उसके उपहास का कारण

बनेगा। माना जा सकता है कि यदि समाज उसे धन देता, भूमि देता, विद्या देता, वर्ण देता और रोटी बेटी देता तो यह वर्ग समाज का प्रबल अंग रीढ़ की हड्डी बनता, और समाज के हाथों उसका महत्व निखर जाता। हम यह कहना चाहते हैं कि जब तक समाज और समाज के व्यक्ति अपना और अपने अंगों के महत्व को जागृत नहीं करते तब तक महाव्याहृतियों के क्षेत्र में जाने का अवसर मिलना कठिन है। इस चौथी व्याहृति का लक्ष्य तब ही पूरा होगा, जब कि समाज अपने एक भी व्यक्ति को हीन देखकर तड़प उठेगा और उसके वास्तविक उत्थान में अपना सर्वस्व लगाने को उद्यत हो जाएगा। व्यक्ति, समाज और राष्ट्र महान् हैं, यही इस व्याहृति का निर्देश है।

'ओम् जनः'– यह पाँचवी व्याहृति है। इस व्याहृति का अर्थ है प्रजनन संतान का उत्थान। व्यक्ति और समाज के अस्तित्व तथा उसके महत्व की आधारशिला प्रजनन से रखी जाती है। यही कारण है कि आर्यजाति में गर्भाधान संस्कार को बहुत महत्व दिया गया है। एक आर्य यहाँ से ही अपनी संतान का निर्माण आरम्भ कर देता है। यदि बाल्य-अवस्था में ही उसके महत्व को जगाना आरम्भ न किया तो उसका अस्तित्व निर्जीव हो जाएगा, या किसी महान् आवरण के गर्भ में जा छिपेगा। इसलिए व्यक्तिगत और सामाजिक दोनों ही जीवनों के उत्थान का आरम्भ प्रजनन से ही होता है। इसलिए माता-पिता बनने वाले नवयुवकों को सन्तत्ति निर्माण के सब उपायों को प्रयोग में लाकर इस व्याहृति के आदेश का पालन करना चाहिए।

'ओम् तपः'– तप का संक्षिप्त अर्थ है कष्ट सहन करना। संतान निर्माण, महत्व का विकास, आनन्द की प्राप्ति, सूक्ष्म शरीर की भावना और स्थूल शरीर की कर्मक्षेत्र में प्रगति ये सारे ही कार्य ऐसे हैं कि उनके मार्ग में कष्टों का आना आवश्यक है। इन कष्टों के अवसर पर जो मनुष्य भीरू बनकर पग पीछे हटा लेगा, उसे बढ़ाने का कोई और भी अवसर बिना कठिनाई के मिल सकेगा यह सम्भव नहीं। महर्षि दयानन्द के जीवन के आरम्भिक भाग को एक सूत्र से ओत-प्रोत पाते हैं। इन दोनों भागों में हमें स्पष्ट ही एक सूत्र जगदीश की झलक दिखाई पड़ती है। पत्थरों, तलवारों, विषों, सिंहों और भयंकर वनों के झमेलों में होकर न टूटता हुआ, यह सूत्र अन्त तक कैसे जा पहुँचा। इस प्रश्न की छानबीन कर उत्तर देते समय हमें एक ही साधन दृष्टिगोचर हुआ है, और उसका नाम है तप। माता-पिता के भी संतान के निर्माण में इसी प्रकार के तप का आश्रय लेना पड़ेगा, तो ही वे इस व्याहृति से लाभ उठाकर अपने समाज तथा अपना स्थान ऊँचा कर सकेंगे।

'ओम् सत्यम्'– सत्य का अर्थ है, मन, वाणी और कर्म में समानता। यह एक ऐसा सिद्धांत है जिसे विश्वास का जन्मदाता कह सकते हैं। विश्वास के अभाव में समाज टुकड़े-टुकड़े हो जाता है और व्यक्ति बिखरकर असहाय पड़े रह जाते हैं। इस व्याहृति के इस प्रकार निरर्थक हो जाने पर शेष सब व्याहृतियाँ भी अपने-अपने काम को करने में असमर्थ रह जाती हैं। धर्म की सबसे पुष्ट आधारशिला सत्य है और यही आचार का सबसे बड़ा मूलमन्त्र है। समाज के संगठन का यही मूलाधार है और व्यक्ति के विकास का आधार यही है। ऋषि दयानन्द जैसे महापुरुषों के जीवन इस सत्य के ही प्रकाश से चमक रहे हैं और चमकते रहेंगे। हम व्यक्ति और समाज में सत्य को पैदा करें यही सातवीं व्याहृति का उपदेश है।

हमने संक्षेप में इन सातों व्याहृतियों के भाव को व्यक्ति और समाज के उत्थान में परम साधन कहा है, पाठक इस विषय पर विचार करें।

■■■

आर्य समाज मन्दिर धामावाला द्वारा आयोजित वेद प्रचार प्रसार महोत्सव
12 अक्टूबर 2023 से 15 अक्टूबर 2023 तक

श्री यशपाल आर्य

23 जनू 1924 से 21 दिसम्बर 2009

अमृत पथ

कार्यालय : आर्य प्रतिनिधि सभा उत्तराखण्ड (पंजी)
आर्य समाज मन्दिर, धामावाला, देहरादून
Email : aryapsuk@gmail.com
Facebook : Arya Pratinidhi Sabha Uttarakhand

अदेयता की स्थिति में कृपया लौटाएं, 'अमृत पथ' मासिक, आर्य प्रतिनिधि सभा उत्तराखण्ड, आर्य समाज मन्दिर, धामावाला, देहरादून-248001
श्री देवेन्द्र प्रसाद यादव जी (प्रधान) मो.: 9837011321, श्री चन्द्र प्रकाश जी (मंत्री) मो.: 9761939183, ज्ञान चन्द गुप्ता आर्य (प्रबन्ध सम्पादक) मो.: 9897346730